परिचय

इस पुस्तक में किस विषय की चर्चा की गई है, इसका बहुत कुछ अन्दाज इसके नाम ही से हो सकता है। इसमें लेखक महाशय ने दलीलों के साथ यह दिखाया है कि प्रातः स्मरणीय महाराज शिवाजी वास्तव में किस ऊँची योग्यता के आदमी थे। उन्होंने शिवाजी महाराज के असली स्वरूप का परिचय सर्वसाधारण को कराया है। लेखक इतिहास के विशेष ज्ञाता हैं। इतिहास ही में आपने एम० ए० पास किया है। अतएव हमारी समझ में आप इस पुस्तक के लिखने के अधिकारी भी हैं। आपने अपने अधिकार का कहाँ तक उपयोग किया है, यह इस पुस्तक के पढ़ने से अच्छी तरह मालूम हो जायगा।

इसकी भाषा, पाठक देखेंगे कि, सरल करने का प्रयत्न जहाँ तक हो सका, किया गया है। इसके सम्पादन में हम ने जिस नीति से काम लिया है उसका दिग्दर्शन यहाँ करा देना आवश्यक मालूम होता है। इस पुस्तक की भाषा सरल और बोलचाल की रखी गई है। कोई पुस्तक इसलिए लिखी जाती है कि लोग उसे पढ़कर उसका मतलब समझें। यदि यह उद्देश पूरा न हुआ तो समझना चाहिए कि उस पुस्तक का लिखना और प्रकाशित करना व्यर्थ हो गया।

हमारी भाषा "परदे की बीबी" तथा छुआछूत की कायल न होनी चाहिये। हिन्दी हिन्दुस्थान की राष्ट्रभाषा मानली गई है। इस दशा में उसका वर्तमान सङ्कीर्ण स्वरूप क़ायम नहीं रह सकता।

अब केवल गुजराती, मराठी, और बँगला ही नहीं वरन् तामिल और तेलगू आदि भाषाओं के बोलनेवालों का भी काम उसे चलाना होगा। इसलिए उसे अपना पेट बहुत बड़ा करना होगा। कितने ही नये शब्दों, उद्गारों और मुहावरों को उसे अपने हृदय में स्थान देना होगा। समय और राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार उसे अपना स्वरूप बराबर बदलते रहना होगा। तभी वह इतना बड़ा और इतनी जवाबदेही का काम कर सकेगी। इस बात को ध्यान में रखकर हमे उन शब्दों तथा मुहावरों आदि का भी प्रयोग करने में आनाकानी नही करना चाहिए जिन्हे आजकल कितने ही लेखक "अ-हिन्दी" के वर्ग मे ढकेल देते है। इस पुस्तक मे भी ऐसे कुछ उदाहरण पाठकों को मिलेंगे। यहाँ पर एक और बात ध्यान देने योग्य है। हमारा खयाल है कि राष्ट्र भाषा के नाते हिन्दी का जो व्यापक स्वरूप आगे कभी निश्चित होगा उस पर यहाँ बोली और लिखी जानेवाली हिन्दी का काफी असर होगा। इसलिए, हमने कहा कि उस सुदिन को ध्यान में रखकर यदि अपनी भाषा का झुकाव उसी दिशा की ओर रक्खा जाय तो क्या अच्छी बात न होगी? जहाँतक हमारी मन्द बुद्धि ने सोचा, उसे इसमें कुछ भी बुराई न दिखाई दी। बल्कि आगे के लिए कुछ आसानी और सुभीता ही सूझ पड़ा। अतएव हमने लगे हाथ उस विचार को कार्य्य के रूप में परिणत कर दिखाने की शुरुवात भी की है। देखें, हिन्दी के हितचिन्तकों को यह काम कहाँ तक पसन्द होता है।

सम्पादक

प्रस्तावना

एम० ए० परीक्षा के लिये मैं आगरे और अलाहाबाद में रहा। वहाँ मुझे यह अनुभव हुआ कि शिवाजी के विषय में अच्छे पढ़े लिखे लोगों में भी बहुत अज्ञान है। इस स्थिति को देखकर मेरी यह इच्छा हुई कि शिवाजी की योग्यता दिखलानेवाले कुछ लेख लिखूं। इसी बिचार से मैंने इसका प्रथम लेख यानी उपोद्घात लिखा। परन्तु संकोचवश अपने पास ही डाल रखा। इसी वीच मे श्री गणेशशङ्कर विद्यार्थीजी से लखनऊ के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर परिचय हुआ। आपने 'अपने ज्ञान का कुछ भाग' लोगो को देने के लिये मुझसे अनुरोध किया। आपके इस अनुरोध से उत्साहित होकर मैंने अपना पहला लेख इन्हीं के पास भेज दिया। उन्होंने कृपापूर्वक "मर्यादा" में छपने के लिये श्री कृष्णकान्तजी मालवीय को भेज दिया। मालवीयजी ने लेख पढ़कर मुझे एक उत्साहप्रद पत्र लिखा। फलतः प्रतिमास में लेख लिखने लगा और वे लेख समय समय पर "मर्यादा" में छपते गये। इस प्रकार नौ लेख छपे। 'मराठी सत्ता के नाश के कारण' नामक लेख खण्डवा से निकलनेवाली "प्रभा" में छपा था। इन्हीं लेखों से मेरा लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ। सारांश यह है कि हिन्दी

संसार से मेरा परिचय करा देने का श्रेय ऊपर्युक्त दो सज्जनों को है। और इसीलिये इनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इन लेखों को पुस्तकाकार छपवाने का श्रेय मेरे प्रिय मित्र श्री० हरिभाऊ उपाध्यायजी को है। इसलिये आपका भी कृतज्ञ हूँ।

पहला संस्करण जल्द ही बिक चुका। हिन्दी और अंग्रेजी के पत्रों ने इस पुस्तक का अच्छा स्वागत भी किया। इसलिये यह दूसरा संस्करण अपने पूर्ण नाम के साथ लोगो की सेवा में उपस्थित करने की मुझे हिम्मत हुई। इच्छा तो थी कि इस संस्करण को खूब परिवर्धित करूँ। परन्तु चिन्ताजनक कौटुम्बिक स्थिति, निजी अस्वस्थता तथा दूसरे अनेक कार्यों को उठा लेने से समय न मिलने के कारण यह इच्छा मन की मन में ही बनी रही। शायद आगे पीछे यह इच्छा परमेश्वर की कृपा से पूर्ण हो जाय।

हिन्दी प्रेमियों का नम्र सेवक

गोपाल दामोदर तामस्कर
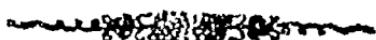
'शिवाजी की योग्यता' नामक पुस्तक की

लागत का ब्योरा—

छपाई	१७० रुपया
कागज़	१७८ ,,
जिल्द बँधाई	३२ ,,
पुनर्मुद्रण का अधिकार प्राप्त करने का	४० ,,
काशी से अजमेर भेजने का रेल-भाड़ा	३५ ,,
विज्ञापन आदि का ख़र्च	१२० ,,
	५७५ रु०

प्रतियाँ २३००

एक प्रति का मूल्य ।)

मंत्री,

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल

अजमेर

विषय-सूची

पहला परिच्छेद—उपोद्‌घात १२
दूसरा परिच्छेद—(१) पूर्व परिस्थिति २६
(२) भौगोलिक परिस्थिति २६
(३) राजकीय परिस्थिति ३०
(४) धार्मिक परिस्थिति ३४
तीसरा परिच्छेद—शिवाजी की समकालीन परिस्थिति ... ४४
चौथा परिच्छेद—लोकनायक के रूप में शिवाजी ... ५४
पाँचवाँ परिच्छेद—(१) शिवाजी की राज्य-व्यवस्था ... ६८
(२) अष्ट-प्रधान मण्डल ६८
(३) मुल्की व्यवस्था ७४
(४) क़िले ७८
(५) सेना ८०
छठाँ परिच्छेद—शिवाजी के उद्देश ८२
सातवाँ परिच्छेद—शिवाजी की अन्य महापुरुषों से तुलना ... ८७
आठवाँ परिच्छेद—शिवाजी के विरुद्ध आक्षेपों पर विचार ... ९४
नवाँ परिच्छेद—शिवाजी के विषय में विदेशियों का मत ... १०४
दसवाँ परिच्छेद—उपसंहार ११२

परिशिष्ट १.

मराठी सत्ता के नाश के कारण ११४

परिशिष्ट २.

शिवाजी और औरंगज़ेब की भेंट का स्थान १२१

शिवाजी की योग्यता

पहला परिच्छेद

उपोद्‌घात

किसी पुरुष की योग्यता समझ लेना मानों उसका शारीरिक, मानसिक और नैतिक बल जानना है। अन्य बातें तभी ज्ञात हो सकती हैं जब हम यह जानें कि उस पुरुष ने क्या काम किये अर्थात् उसका चरित्र हमें ज्ञात हो। सारांश यह कि किसी की योग्यता समझने के लिए उसके पूर्व-चरित्र की छोटी बड़ी सभी घटनायें जानना आवश्यक है। जब हम किसी पुरुष का चरित्र पढ़ते हैं तब हम कुछ न कुछ उसकी योग्यता अवश्य समझने लगते हैं। हां, इतना कहीं कही रह जाता है कि उसके चरित्र में जो कहीं प्रत्यक्ष असम्बद्ध बातें होती हैं उनका पूर्ण अर्थ हमारे ध्यान में नहीं आता। परन्तु हम, चरित्र पढ़ने में, ये बातें भूल जाते हैं अथवा जो वह महान् पुरुष हो तो अपने मन को समझा लेते हैं कि सत्पुरुषों के प्रत्येक काम के करने में कुछ न कुछ उद्देश्य होता ही है, वे कभी कोई काम निरर्थक अथवा असम्बद्ध नहीं करते। साधारण जन चरित्र पढ़ने में ही सन्तोष

मान लेते हैं, उसका मनन करने में अर्थात् उसकी योग्यता समझने मे उन्हें उत्साह नहीं होता और इस कारण चरित्र-वाचन से जितना लाभ होना चाहिए उतना नहीं होता। जब हम किसी की कृति का मनन करने लगते हैं तब उसके गुण-दोष समझने का प्रयत्न साथ ही होता रहता है और जो वे पुरुष प्रभावशाली हों तो उनके गुणों का, परिचय हुए बिना नहीं रहता। यदि गुणों का प्रभाव पड़ा तो उस प्रकार का थोड़ा बहुत व्यवहार होता है। और यही सत्पुरुषों के चरित्रों के पठन का लाभ है। शिवाजी महाराज के कितने ही छोटे बड़े चरित्र हिन्दी में लिखे गये हैं और हिन्दी की आज की अवस्था में कोई सविस्तर चरित्र पाठको के सम्मुख रखना शक्य भी नहीं है, परन्तु इतने महान् सत्पुरुप की योग्यता समझने का प्रयत्न करना हमें नितान्त आवश्यक मालूम होता है। इसलिये हम यह अल्प स्वल्प प्रयत्न करने पर उद्यत हुए हैं। आजतक शिवाजी का स्मरण लुटेरा, डांकू, बागी, इत्यादि शब्दों से किया जाता है। हमें अंग्रेज़ी में जितनी किताबें पढ़ाई जाती हैं उनमें उस महान् पुरुष को प्रायः यही विशेपण लगाये गये हैं। कितने अफसोस की बात है कि जिस पुरुप के चरित्र में भौतिक और पारलौकिक, राजकीय और नैतिक उन्नति के स्रोत वह रहे हैं और जहाँ हम सब को स्नान करना उचित है, उसी पर लोग डांकू, लुटेरा, बागी, इत्यादि होने का आरोप करें और इस प्रकार उस पुरुष के विषय में कपोल-कल्पना करने का अनावश्यक प्रयत्न किया जाय। हम देखते हैं कि स्कूलों और कालिजों में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनमें मराठी इतिहास का हाल बहुत थोड़ा रहता है, मानों सारे हिन्दुस्थान के इतिहास

की इतिश्री मुसलमानों के राज्य-वर्णन में और अंग्रेजों की लड़ाइयों की तफसील में ही हो जाती है। जिस पुरुष ने इतिहास का प्रवाह ही बदल दिया और एक नया ही राष्ट्र बना दिया, उसका चरित्र जानना हमारे शिक्षणदाता क्या पाप समझते हैं? शायद ऐसा ही हो, तभी तो नेल्सन और वेलिंगटन प्रभृति परद्वीपस्थ वीरों के उद्गारों से हमारी स्मरण-शक्ति लादी जाती है, परन्तु शिवाजी का एक भी उद्गार किं वा एक भी उत्तेजक घटना का वर्णन हमें नहीं बतलाया जाता। ऐसी अवस्था में शिवाजी की योग्यता हमारी समझ में कैसे आ सकती है? ऐसी अवस्था में हमारे नाममात्र के शिक्षित हिन्दू भाइयों को शिवाजी उसी रूप में देख पड़ें, तो इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं! हमें हिन्दुस्तान का तो इतिहास पढ़ाया जाता है; परन्तु शिवाजी का इतिहास नहीं, मानो शिवाजी भारतवासी थे ही नहीं। अंग्रेजों का इतिहास ही क्या पूर्णतया इस भारतवर्ष का इतिहास है? शायद ऐसा ही हो, क्योंकि हिन्दुस्तान के इतिहास में मराठे, राजपूत और सिक्खों का वर्णन बहुत ही कम रहता है। जिस इतिहास में उत्तेजक जीवन भरा है उसके विषय में तो हम नितान्त अज्ञानान्धकार में रहे, परन्तु अंग्रेजों की एक एक लड़ाई के वर्णन में शिरस्त्राण से लेकर पादत्राण और ढाल तलवार तक की बातें बतलाई जावें। हमारे इतिहास की ऐसी दशा देखकर किस सच्चे पुरुष को दुःख न होगा? परन्तु हाय! हम कर ही क्या सकते हैं? शिवाजी को आप डाकू कहे तब भी वह इतिहास पढ़ना ही होगा और लुटेरा कहे तब भी पढ़ना ही होगा! हमारा इतिहास हमें चाहे जिस रंग में दिखलाया जाय, हम उसी रङ्ग में उसे देखने को

तैयार हैं !!! परन्तु हमें तो इस महान् पुरुष की योग्यता समझ लेना आवश्यक है और इसलिए रागद्वेष इत्यादि मनोविकार दूर करके उसके चरित्र का मनन करना उचित है।

ऊपर कही चुके हैं कि शिवाजी की योग्यता उनका चरित्र पढ़े बिना और उसका मनन किये बिना नहीं जानी जा सकती; क्योंकि दुनिया के इतिहास में, इस महान् पुरुष का चरित्र इतिहास से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। जहाँ पहले स्वातन्त्र्य के बदले परतन्त्रता, स्व-धर्म के बदले पर-धर्म, शान्ति के बदले अशान्ति स्वजाति के बदले परजाति न्याय के बदले जुल्म, ऐसी हजारों विरुद्ध बातें थीं, उन सबको बदल कर उनकी जगह जहाँ स्वातन्त्र्य, स्वधर्म, शान्ति, स्वजाति, न्याय—इत्यादि प्रस्थापित किये गये, वहाँ का इतिहास कितना अधिक महत्वपूर्ण होना चाहिए ? वाटरलू की लड़ाई केवल दैववशात् वेलिङ्गटन ने जीतली; बस, इतने ही पर आज वेलिङ्गटन का कितना कीर्तिगान होता है ! सिकन्दर ने क्षणभर परजातियों पर विजय प्राप्त करके राज्य का उपभोग किया भी न था कि जल्द ही पूर्व दशा ज्यों की त्यो आगई; परन्तु सिकन्दर उतनेही से महान् हो गया ! क्षणभर योरप में ढोल पीटकर सेंटहेलीना में शत्रु के जेलखाने में प्राण दे देने से नेपोलियन का चरित्र आश्चर्य्यकारक हो गया; पर जिस पुरुप ने नवीन 'इतिहास' रचा, जिस पुरुष ने नवीन देश बनाया, जिस पुरुष ने नवीन राष्ट्र बनाया, जिस पुरुष ने नवीन जोश पैदा किया, जिस पुरुष ने स्वधर्म का उद्धार किया, जिस पुरुप ने निःसीम स्वार्थत्याग का उदाहरण सामने रक्खा, उसका महत्व हमारे सहृदय परद्वीपस्थ भाई लुटेरा, डाकू, इत्यादि

शब्दों से बतलाना चाहते हैं !! यह देख कर उनकी सहृदयता के विषय में यदि किसी को शङ्का हो तो कौन आश्चर्य की बात है ? हमारे इस मराठी इतिहास का महत्व स्वयं प्रकाशमान है। पर हमारी शिक्षा के अधिकारी इस रूप में हमें उसे दिखलाते हैं कि हमें इस इतिहास में कुछ जीवन ही नहीं दिखाई देता। शिवाजी ने महाराष्ट्र में जो नवीन राष्ट्रीय जोश भर दिया, उसकी हमें कल्पना भी नहीं करने दी जाती ! जिस जोश के कारण प्रत्येक महाराष्ट्रीय एक एक शिवाजी ही हो गया था, उसका हमें बोध तक नहीं होने दिया जाता। शिवाजी और उनके अनुयायियों के स्वदेशाभिमान की बात तक सुनाई नहीं पड़ती ! औरंगज़ेब के समान शूर-व्याघ्र अपने दल समेत दक्षिण में आ पहुँचा; यह तो हम अच्छी तरह जानते हैं। परन्तु मुट्ठी भर मराठों ने उसके दाँत कैसे खट्टे किये, इसका कुछ भी परिचय हमें नहीं कराया जाता। नाना फडनवीस के समय में कैसे स्वदेशाभिमान के साथ हमारे वीर भाइयो ने अंग्रेजो को शरण दी थी, इस पर बेतरह परदा डाल दिया जाता है, और महाराष्ट्र वीरों ने समय समय पर शिवाजी महाराज का स्मरण करके जो स्वदेशाभिमान की ज्योति दिखलाई थी उसका प्रकाश हम तक नहीं पहुँचने दिया जाता ! परन्तु इन सब मे मराठी इतिहास का महत्व और शिवाजी महाराज की योग्यता ठूंस ठूंस कर भरी है। जिस किसी को यह जानना हो उसे मराठी इतिहास का अवलोकन और मनन विशेष रूप से करना चाहिए।

उनकी आँखों की ज्योति नष्ट हो गई है, कानों में मैल भर गई है, हृदय के परदे बन्द हो गये हैं और मन विचारहीन हो गया है, जो मराठी इतिहास के निर्माता को लुटेरा, डाकू कहने के सिवा

और कुछ कहना नहीं जानते। नहीं तो यह स्पष्ट है कि लुटेरे कभी ऐसा दीर्घकालीन राज्य नहीं कर सकते कि जिससे देश का नकशा सारा बदल जाय। शिवाजी कुछ हैदर, टीपू, अलींवर्दीखाँ किंवा निज़ामुलमुल्क तो थे नहीं। ऐसे होते तो उनका भी राज्य कभी का रसातल को चला जाता। महाराष्ट्र पर हिन्दुस्थान के एकच्छत्र बादशाह की फ़ौज ने बारबार आक्रमण किया; पर मरहठों ने हमेशा उन्हें हतवीर्य्य कर पीछे लौटा दिया! आख़िरकार बादशाह स्वयं अपनी समस्त सेना लेकर दक्षिण में आया और बराबर पच्चीस साल तक मुट्ठी भर मरहठों से लड़ता रहा। पर उसने क्या किया? मुशकिल से मृत्यु के समय अपने अजेय वैरियों के हाथ फँसते २ बचा, और यह उद्गार प्रकट किये कि "मैंने अपने जीवन भर में कुछ न किया!" क्या यह काम लुटेरों का हो सकता है? अथवा इसमें कुछ और तथ्य है? अलीवर्दीखाँ, टीपू आदि तो सचमुच लुटेरे थे और जब तक वे स्वयं योग्य रहे और जब तक उनके हाथ में बल रहा तभी तक उनका राज्य भी रहा! उनके शरीरपात के साथ ही उनके राज्य का भी पतन हो गया! पर शिवाजी के अनन्तर, कठिन कठिन कठिनाइयो से बचते हुए वह राष्ट्र स्वतन्त्र ही रहा है और पश्चिमी लोगों को भी कहना पड़ता है कि यदि वह राष्ट्र सबसे पहले ही स्थापित हुआ होता तो शायद हिन्दुस्थान का इतिहास ही बदल जाता और वे नहीं कह सकते कि हमारी क्या दशा होती? जिसने ऐसे राष्ट्र का निर्माण किया उसकी योग्यता का विचार करना ज़रूरी है। मुसलमानों के आक्रमणों से इस राष्ट्र में कमज़ोरी नही आई; बल्कि नित्य नवीन जोश ही आता रहा। प्रतिक्षण मालूम होता था कि मुट्ठी भर

मरहठे अब जाते हैं; पर क्या? दाबी हुई हवा के समान वे दुगुने वेग से उठते थे और उस वेग के सामने कितनों ही को सिर नीचा करना पड़ता था। तार पर खेल करनेवालों के समान, उनकी ओर जो देखता वह यही कहता कि अब गिरता ही है! पर क्या? सारा खेल कुशलता से दिखाकर उन लोगों ने औरंगज़ेब सरीखे कट्टर वैरियों से भी तारीफ़ करवाई!

क्या यह लुटेरों का काम हो सकता है? पाश्चात्य इतिहासकार कहा करते हैं कि उसे तो दैववशात् सफलता मिलती गई और मुसलमानों ने बारंबार मूर्खता दिखलाई। इस कारण वह राज्य स्थापित रने पाया। दैव जो इस तरह सभी को फलीभूत हुआ करे तो फिर क्या न हो? यदि यह कहें कि दैववशात् द्रव्य मिल गया, दैववशात् परीक्षा पास करली, तो साधारण लोग विश्वास भी करलेंगे; पर यदि यह कहें कि दैववशात् राष्ट्र का उद्धार करलिया तो अनपढ़ भी तुरन्त हँस पड़ेंगे। यही बात इन इतिहासकारों की है। अफ़जलखाँ के समान कट्टर वीर को जिसने मृत्यु के मुख में भेज दिया उसकी योग्यता समझना हो तो पहले अफजलखाँ की योग्यता जानना आवश्यक है। इस कट्टर मुसलमान को आदिलशाही के दरबार ने भेजा था। किस लिए? शिवाजी को पकड़ कर लाने के लिए; और उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं शिवाजी को जैसे होगा पकड़ कर ज़रूर लाऊँगा। उसका शारीरिक बल, मुसलमान होने के कारण उसका पक्का जोश, हिन्दुओं के बलवा करने के कारण उसका असीम क्रोध, और उसका आदिलशाही दरबार का पहला सेनापति होना इत्यादि बातों पर ध्यान देने से यही मालूम होता है कि शिवाजी उससे जीत न

सकते थे। तिस पर भी शिवाजी ने अफ़ज़लखाँ को ज़मीन दिखादी और उसकी सेना खदेड़ते-खदेड़ते बीजापुर भेजदी। हिन्दू का मुसलमान से लड़ने को और झगड़ा करने को तैयार होना और फिर भी यह काम सफलतापूर्वक बीजापुर के राज्य के विरुद्ध करना, यह हर मुसलमान के लिए बड़े क्रोध और द्वेष की बात थी। परन्तु शिवाजी का जोश जबतक मरहठों में भरा है तब तक मुसलमान उनसे किस प्रकार जीत सकते हैं ? इस विजय में शिवाजी की पूर्ण योग्यता दिखाई देती है।

शिवाजी की योग्यता इतनी ही बात से स्पष्ट है कि जब वे दिल्ली से लौटे, तब उनके राज्य में कुछ भी हेरफेर न हुआ, कहीं भी यह न मालूम होता था कि उनकी ग़ैर हाज़िरी में कुछ गड़बड़ हुई। सब काम ऐसा हो रहा था, मानो वे स्वयं वहाँ राज्य कर रहे थे। इस समय, शिवाजी ने सन्धि क्यों की इसका निर्णय करना कठिन है। जिसने अफ़ज़लखाँ और शाइस्ताख़ाँ के समान सेनापतियों को मार भगाया, जिसके मुरारबाजी के सदृश स्वार्थ-त्यागी वीर ने केवल तीनसौ मावले लेकर दिलेरख़ाँ को उसके हज़ारों सैनिकों सहित, मार भगाया था, वही सन्धि करने को तैयार हो, यह तो आश्चर्य्य की बात अवश्य मालूम होती है; परन्तु हमें तो इसमें शिवाजी की पारदर्शी बुद्धि दिखाई देती है। एक तो जयसिंह और दिलेरख़ाँ ये बड़ी भारी तैयारी से आये थे। कहीं जीत न हुई तो "समूलञ्च विनश्यति"। दूसरी बात यह थी कि जयसिंह जैसे एक हिन्दू-राजा के सामने रण में खड़ा होना ठीक न था। शिवाजी को हिन्दुओं से तो हिन्दुस्थान लेना था नहीं, लेना था मुसलमानों से; इसलिए अगर जयसिंह से वे लड़ते तो

शायद इतना ही होता कि अन्य हिन्दू-राजा शिवाजी के गर्व से सहानुभूति न रखते। शिवाजी के अबतक के कार्य्य से कई हिन्दू-राजाओं को यह आशा उत्पन्न हो गई थी कि शायद यह मुसलमानों से हिन्दुस्थान का उद्धार करें। इस कारण शिवाजी को वे प्रेम की दृष्टि से ही देखते थे; पर जयसिंह से लड़ने से यह प्रेम दूर होने का डर था। परन्तु सब हिन्दुओं को अपनी ओर कर लेने की उनकी पूर्ण इच्छा थी और जयसिंह जैसे पराक्रमी और बली राजा को अपने विरुद्ध करलेना वे ठीक नहीं समझते थे। सन्धि करके युक्ति और अन्य उपायों से अपनी ओर उसे कर लेने का भी शायद शिवाजी का विचार हो। तीसरी बात यह है कि सन्धि करने से उन्हें दिल्ली जाने का अवसर मिलता था। वहाँ जाकर राजपूत राजाओं को अपनी ओर मिला लेना और औरंगज़ेब के राज्य-बल की कुछ कल्पना कर लेने का भी उनका विचार हो सकता है। ये तीनों बातें ऐसी हैं कि इस सन्धि के कारण विचारवान् पुरुष शिवाजी को दोष न देंगे। परन्तु यह स्पष्ट है कि शिवाजी के दिल्ली जाने से केवल उन्हीं पर ही नहीं; वरन् सारे महाराष्ट्र की आशा पर वज्राघात हुआ था। यदि औरंगज़ेब उन्हें क़त्ल करने पर उतारू होजाता तो कोई क्या कर सकता था? उस समय महाराष्ट्रीयों में इतनी शक्ति उत्पन्न नही हुई थी कि वे औरंगज़ेब की महती सेना से टक्कर लेते। राजपूतों में भी इतना ज़ोर न था कि औरंगज़ेब से किसी प्रकार बदला लेते। औरंगज़ेब ने शिवाजी को क्यों जीता छोड़ा, इस बात का निर्णय करना कठिन है। परन्तु ऐसे समय में शिवाजी की बुद्धिमत्ता, उनका अनुपम धैर्य्य और उनकी अगाध कल्पना-शक्ति आदि गुण देखकर मन

आश्चर्य रूपी समुद्र में गोता खाने लगता है। और देखिए, जाने के पहले राज्य की व्यवस्था भी उन्होंने कितनी उत्तम करदी थी कि, स्वयं उनके न रहने पर भी, राज्य का काम ज्यों का त्यों चलता रहा। हेर-फेर हमें कहीं नहीं मालूम होता। उस समय उन्होंने राज्य की व्यवस्था इसी विचार से की होगी कि कहीं दिल्ली में हमारा कुछ भला बुरा हो जाय तो भी महाराष्ट्र के स्वतन्त्र राज्य की पताका ज्यों की त्यों फहराती ही रहे। इस विषय का पूर्ण मनन करने पर इस महापुरुष पर श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती।

महाराष्ट्र राज्य पर सब से बड़ा भारी सङ्कट शिवाजी की मृत्यु के अनन्तर आया और इस असाधारण पुरुष की सच्ची योग्यता तभी दिखाई पड़ी। औरंगज़ेब ने जब देखा कि शाही सेनापतियों के भेजने से मरहठे हाथ नही आते, तब आख़िरकार स्वयं अपनी तमाम शाही सेना समेत दक्षिण में आ पहुँचा और एक एक करके सब क़िले लेने लगा। धीरे धीरे महाराष्ट्र का बहुत सा भाग उसने जीत लिया; पर तब भी मराठे हाथ न आये। सम्भाजी पकड़े गये और औरंगज़ेब ने बड़ी क्रूरता से उनका खून किया। शाहू और ताराबाई उनके पास क़ैद थे। सारे महाराष्ट्रीय राज्य-भ्रष्ट हो गये थे, पैसा मिलना असम्भव ही हो गया था, मराठी सेना अव्यवस्थित हो इधर उधर भटकने लगी थी। ऐसे समय मे भी मराठे थोड़े भी न दबे! उलटे जब कभी यह मालूम होता कि अब सर्वनाश हुआ, तभी वे फ़ौलाद की स्प्रिंग की तरह दुगने वेग से उठते और शाही सेना को मार भगाते। आख़िर राजाराम अपने मन्त्रियों सहित जिंजी के किले में जा रहे और

वहाँ से महाराष्ट्र का राज्य करने लगे। मरहठों के राजा देश छोड़कर परदेश में जा रहे, पर परतन्त्रता स्वीकार न की। इस तरह की तुलना अन्यत्र किसी इतिहास में मिलना दुर्लभ है। हाँ, और लोगों के इतिहास में ऐसा एक उदाहरण है, पर वह इस महाराष्ट्रीय कर्तव्य-पालन की समता नहीं कर सकता। सोलहवीं सदी मे स्पेन के राजा फिलिप ने डच लोगों को जबरन रोमन कैथोलिक धर्म का अनुयायी करना चाहा। वे प्रोटस्टेंट धर्माभिमानी थे। इसलिए इस जुल्मी राजा का जुल्म सहन न कर उन्होंने उसके विरुद्ध बलवा मचाया और स्वतन्त्र बन बैठे। प्रायः सब जानते हैं कि डच लोगों का देश बहुत छोटा है, पर उसपर सेना के ऊपर सेना उमड़ उमड़ कर आने लगी। यह झगड़ा धर्म के कारण था। इसलिए जोश में वह हिन्दू-मुसलमानों की लड़ाइयो से कम न था। इनके युद्ध होते रहे। स्पेन का राजा बड़ा वलिष्ठ था। उसका राज्य बड़ा भारी था। उसकी सेना कमर कसे हुए तैयार थी। उसके पास कुशल सेनापति थे। और डच लोग सर्वसाधनो से हीन थे। फिर भी उनके स्वतन्त्र मन पर विजय प्राप्त करना कठिन था। इतिहास में ये लोग प्रवीण नाविक के नाम से प्रसिद्ध हैं। अपने टापू से वे समुद्र की लड़ाइयाँ लड़ते रहे और स्पेन की प्रचण्ड सेनायें उनके आगे कुछ न कर सकी। आख़िर तीस चालीस वर्ष के युद्ध के वाद सन् १६०९ ईसवी में, उनकी स्वाधीनता स्पेन के राजा ने स्वीकार करली। यहाँ यह खयाल रखना चाहिये कि इंगलैंड की रानी एलिज़बेथ से उन्हे वरावर सहायता मिलती रही। इतिहासकारों का मत है कि अगर यह सहायता न मिलती तो डच लोगों का सर्वनाश कभी का होजाता। दूसरी वार

सत्रहवीं शताब्दी में जब फ्रांस के राजा लूई (चौदहवें) ने उनके देश पर आक्रमण किया तब डच लोगों ने असीम धैर्य्य दिखलाया। उनके पास न देश था, न सेना थी, न पैसा था, और न सेनापति। ऐसी स्थिति में वे बराबर इस बली राजा की प्रचण्ड सेना से टक्कर लेते रहे। इस वार उन्हें समस्त योरप से सहायता मिली; क्योंकि उनके विजय-पराजय में योरप के बहुत से देशों का स्वार्थ सम्मिलित था और उनका स्वतन्त्र रहना उन्हें लाभकारी था। ऐसा ही महान सङ्कट महाराष्ट्र पर आया था। पर उन्हे किसी प्रकार की सहायता मिलनी भी असम्भव थी। महाराष्ट्र के पास के दो राज्य बीजापुर और गोलकुंडा मुग़लों ने कभी के निगल लिये थे। और बाक़ी तमाम देश में मुगलों का राज्य था। इतना ही नहीं, ख़ास महाराष्ट्र में भी मुग़ल सेना चारों ओर फैल गई थी और मरहठों को अपना देश छोड़कर जाना पड़ा था। पर स्वातन्त्र्य क़ायम रखने के लिए वे जिजी के क़िले से नाम मात्र का राज्य कर रहे थे। इतना होकर भी मरहठे क्या मुग़लों के हाथ आये? उलटे, मुग़ल सेना पर ही वे वारवार आक्रमण किया करते और समय पाकर उनकी फोज कत्ल करते और उनका द्रव्य लूट लाते थे। जिंजी के किले के पास जुलफिकारखाँ के समान वली और कुशल सेनापति को सात वर्ष घेरा डाल कर पड़े रहना पड़ा और अन्त में क़िले पर अधिकार मिलना भी न मिलने के वरावर हो गया। सव खाली! महाराष्ट्र की गवर्नमेंट पर अधिकार हुआ ही नहीं। पच्चीस वर्ष तक औरंगज़ेव मरहठों का पीछा जगह जगह पर करता रहा; पर कुछ हाथ न आया। मरहठो को वह जीत ही न सका था कि उसकी आयु पूरी हो गई और शरीर

छोड़ने की इच्छा से अहमदनगर जाते समय वह मरहठों के हाथ आते आते जरा ही बच गया, नहीं तो इतनी प्रचण्ड सेना रहते भी उसकी मृत्यु क़ैदखाने में ही हुई होती। उसकी मृत्यु के बाद क्षणभर में महाराष्ट्र मरहठों का हो गया। मराठी इतिहास बड़ा मनोरञ्जक और बोधपूर्ण है। उस इतिहास का निर्माण-कर्ता कौन है? वही महापुरुष शिवाजी! यह जो घटना ऊपर लिखी है उसके अजेय वीर सब शिवाजी के साथी थे। शिवाजी का जोश ही कुछ ऐसा था कि उनसे जो मिलता वह शिवाजी ही हो जाता था। उनकी मृत्यु के बाद उनका स्मरणमात्र ही पर्य्याप्त था। केवल स्मरण से ही प्रत्येक महाराष्ट्रीय के शरीर में ऐसी विलक्षण शक्ति का सञ्चार हो जाता था कि जीतेजी उनसे जीतना किसी की शक्ति का काम नहीं था। इस घटना के समाप्त होने तक शिवाजी के साथ के कई वीर मर चुके थे। पर शिवाजी का उत्पन्न किया हुआ वह जोश जबतक महाराष्ट्र में मौजूद था तब तक शिवाजी किंवा उनके साथी रहे या मरे तो भी कोई अधिक अन्तर न होता था। उस महा व्यक्ति की योग्यता न जाने कितनी अधिक होनी चाहिए जिसका केवल स्मरणमात्र सब ऐहिक विकारों से दूर कर प्रत्येक महाराष्ट्रीय को वीर योगी बना देता था? वह महा-पुरुष न जाने कैसा होना चाहिए जो मरकर भी अपने अनुया-यियों से अपना कार्य्य करा रहा था? उस महाराष्ट्रीय में कौनसी शक्ति रही होगी जिसने केवल ३२ वर्ष ही में मुसलमानों के समान बलिष्ट शत्रु से अपना देश मुक्त कर स्वराज्य की स्थापना की? बस यही जानने का प्रयत्न करना इस पुस्तक का उद्देश है।

दूसरा परिच्छेद

पूर्व-परिस्थिति

किसी भी मनुष्य पर उसकी परिस्थिति का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। अतएव उस पुरुष की योग्यता जानने के लिए उसकी परिस्थिति का ज्ञान होना आवश्यक है। इस लेख में हमने शिवाजी के जन्म की पूर्व स्थिति के विचार करने का संकल्प किया है। इस पूर्व स्थिति के मोटी तरह तीन विभाग किये जा सकते हैं—(क) भौगोलिक (ख) राजकीय और (ग) धार्मिक। इस अन्तिम विभाग में सामाजिक परिस्थिति भी सम्मिलित है। सभी देशों में सामाजिक बन्धनों पर वहुधा धर्म का बड़ा प्रभाव होता है। इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध सब जगह दिखाई देता है। हिन्दुस्थान में तो यह सम्बन्ध शरीर और जीव के सम्बन्ध के बराबर ही घनिष्ठ है। जिस काल का हम विचार कर रहे है, उस समय सामाजिक वन्धन और धार्मिक वन्धन मे किसी तरह का अन्तर समझना अत्यन्त कठिन था। इसलिये सामाजिक प्रश्नों का विचार हम अलग न करेंगे।

(क) भौगोलिक परिस्थिति

प्रकृति ने महाराष्ट्र-देश पर बड़ी कृपा की है। यहाँ पर जल, वायु और उत्तम स्थान के सब लाभ विद्यमान हैं, जो हिन्दुस्थान में अन्यत्र नहीं हैं। दोनों ओर पर्वत श्रेणियाँ स्थित हैं। उत्तर-दक्षिण सह्याद्रि पर्वत है और पूर्व-पश्चिम सतपुडा और विध्याचल।

इनके अलावा छोटी मोटी बहुत सी पर्वत-श्रेणियाँ हैं, जिनके कारण यहाँ की भूमि विषम और ऊँची-नीची बन गई है। भूगोल की दृष्टि से देखा जाय तो महाराष्ट्र में कोंकन, जो समुद्र और सह्याद्रि के बीच की पट्टी है और वह देश जो कृष्णा और गोदावरी की तराई है, ये दोनों भाग सम्मिलित हैं। इस कारण यह देश आप ही सुरक्षित है। और पर्वतों पर जो क़िले हैं उनके कारण और भी सुरक्षित हो गया है। ये क़िले इस देश के एक मुख्य स्वरूप हैं और राजकीय इतिहास में उनका बड़ा भारी महत्व है। इस स्वाभाविक बनावट के कारण उत्तर के अत्युष्ण किंवा अति शीतल जलवायु की जगह यहाँ सम और आरोग्यवर्धक वायु विद्यमान है। ज़मीन पहाड़ी होने के कारण, बहुत उपजाऊ नहीं है और लोग कट्टर होकर भी सादे हैं।

लोगों के शील का भी इस देश पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है। उत्तर-हिन्दुस्तान में आर्य लोगों की प्रधानता होने के कारण मूल निवासियो का कोई महत्व नहीं रहा है और नितान्त दक्षिण में द्रविड़ लोगो की भिन्नता पूर्णतया बनी रही है, और उन पर आर्य लोगों का कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाया है। पर महाराष्ट्र में, भौगोलिक स्थिति के कारण, आर्य और द्रविड़ लोगों का ऐसा उचित सम्मिश्रण हुआ है कि दुष्परिणाम न बढ़कर सब सुपरिणाम ही दिखाई देते है। इस सम्मिश्रण का परिणाम, एक हद तक, भाषा की विचित्रताओ में भी देख पड़ता है, जिसका मूलाधार तो द्राविड़ी है पर जिसकी वृद्धि और रचना आर्य-परिणामों से हुई है। रङ्ग में भी वे न तो उत्तर के लोगों की तरह गोरे, नाज़ुक और सुडौल हैं, न द्रविड़ लोगों की तरह बिलकुल

काले और रूखे हैं। उनमें सीदियन लोगों का भी कुछ मिश्रण हो गया है।

इन कारणों से यहाँ की संस्थाओं में और धर्म में कुछ ऐसी समता है जो हिन्दुस्थान में अन्यत्र नहीं पाई जाती। इनमें ग्राम-जनों की संस्थायें ही मुख्य हैं, जिनकी इतनी वृद्धि हो गई थी कि वे अनेक विदेशीय आक्रमणों के बाद भी बनी हुई है। पञ्चायत-पद्धति के समान ग्राम-संस्थायें अभीतक मौजूद है राज्य-प्रबन्ध के बड़े बड़े उद्देश्य उनसे सिद्ध होते हैं। वे आजकल की शासन-प्रणाली के एक मुख्य अङ्ग हैं और सिन्ध और गुजरात में जहाँ वे मुसल-मानी प्रभाव के कारण नष्ट हो गई थीं, फिर भी उनका प्रचार किया गया है। साथ ही इनके रैयतवारी बन्दोबस्त से किसानों को ज़मीन की पूर्ण मालकियत प्राप्त है और उससे उन्हें एक तरह की स्वाधीनता मालूम होती रहती है, जो अन्यत्र किसी प्रान्त में नही देख पड़ती।

इन संस्थाओं के साथ ही एक बात और है। न तो यहाँ द्रविड़-देश के समान धर्मपन्थों की सख्ती है, न उत्तर की तरह जातियों की उप-जातियाँ और फिर उनके भी अनेक उपभेद हैं। यहाँ पर भिन्न २ भेदों मे इतनी सहिष्णुता है कि यह कह सकते हैं, कि इनकी उन्हें कुछ परवाह ही नही है। यहाँ पर ब्राह्मण और अब्राह्मण समानता से मिलते जुलते हैं। सच बात तो यह है कि वैष्णव साधुओं के प्रभाव से और सामाजिक दशा से यहाँ के शूद्र भी क्षत्रिय या वैश्य के समान जिस प्रकार जो धन्धे करते थे उसी प्रकार ऊँची दशा को प्राप्त हो गये हैं। यहाँ तक कि मुसलमानों का अत्यन्त धार्मिक कट्टर स्वभाव इस प्रभावशाली दशा में नरम

पड़ गया है। सहिष्णुता और नरमी (Moderation) ये दो गुण महाराष्ट्रीय शील के प्रधान और चिरस्थायी तत्व हैं।

इन ऊपर लिखी हुई बातों के कारण यहाँ पर स्थानीय स्व-राज्य और स्वाधीनता का विचार कुछ ऐसा बढ़ गया है कि हिन्दू या मुसलमान राजाओं के समय में यह देश एक सत्ता के अधीन बहुत कालतक नहीं बना रहा। उत्तर हिन्दुस्तान में बड़े बड़े राज्य क़ायम हुए; पर महाराष्ट्र में राजकीय सत्ता किसी एक के हाथ में न होने पाई। वहाँ के जुदे जुदे राज्यों के कारण ही ऐसा होता था और वे सब शत्रु की चढ़ाई के समय मिलकर काम करते थे। समय समय पर जो चढ़ाइयाँ हुईं, उन्हें उन्होंने विफल कर दिया। प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि यहाँ बहुत से छोटे छोटे राज्य थे और राजकीय सत्ता सदा एक के हाथ से दूसरे के हाथ में बदलती ही रहती थी।

महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति ऐसी है और उसके परिणाम ये हैं। अन्य देशों के इतिहास पढ़ने से यही ज्ञात होता है कि ऐसे देश के लोग स्वराज्य-प्रिय और स्वाधीनता के प्रेमी होते हैं। ऐसे लोगों को कोई बलाढ्य राजा भले ही कुछ दिन तक तलवार के जोर से दबा ले, पर बहुत काल तक उसकी नादिरशाही सत्ता नहीं चल सकती! यह इसी का परिणाम है कि बड़े बड़े प्रयत्न होने पर भी महाराष्ट्र मुसलमानो के पूर्ण अधीन कभी न हुआ। और औरंगज़ेब के सदृश बलाढ्य और दृढ़-चेता बादशाह को भी, पचीस वर्ष तक लड़ने के बाद, हार खाकर लौट जाना पड़ा।

इन ग्राम-संस्थाओं का प्रबन्ध ऐसा था कि सरकार का कर चुका देने के बाद ग्राम की भीतरी बातों में सरकार को हाथ डालने की आवश्यकता न होती थी। इस कारण उनका नाश मुसलमानों से न होसका। लगान आदि वसूल करने के काम में उस देश के लोगों की सहायता आवश्यक थी। उत्तर-हिन्दुस्तान में अफग़ानिस्तान और ईरान से जैसे नये नये असली मुसलमान आया करते थे उस प्रकार महाराष्ट्र में नहीं आ सकते थे। उत्तर में फ़ारसी और उर्दू भाषाओं का उपयोग सब सरकारी कामों में होता था; पर दक्षिण में इन कामों मे मराठी भाषा जारी थी। पास में ही विजयानगर का प्रबल राज्य था। इस कारण मुसलमानों की उतनी क्रूरता यहाँ प्रकट न हुई। सारांश यह कि दक्षिण में मुसलमानी राज्य में भी, हिन्दुओं का स्वत्व बना हुआ था।

उस समय अनेक मराठे सरदार बड़े बलवान थे। कमरसेन, मुरारपन्त, मुरारराव, मदनपन्त, जगदेवराव, रायराव, कदमराव, मोरे, शिर्के, घाटगे, घोरपड़े, जाधवराव भोंसले, इत्यादि उस समय मुख्य २ मराठा सरदार थे। शिवाजी का पिता शाहजी भोंसलेवंश में उत्पन्न हुआ था। उसने अपनी योग्यता से बहुत सी जागीर कमाई। शाहजी पहले अहमदनगर के दरबार में था। उसने इस राज्य को वचाने के अनेक उपाय किये और उसी के कारण इस राज्य की स्वतन्त्रता कुछ दिन तक बनी रही, और मुगलों की कुछ न चल सकी। मलिक अम्बर को उससे बड़ी भारी सहायता मिलती रही। आख़िर १६३७ ई० में अहमदनगर की निज़ामशाही का नाश हुआ और शहाजी वीजापुरवाले की नौकरी करने लगा। वहाँ भी उसका वड़ा प्रभाव था।

इस प्रकार मराठा सरदारों का आदर दिनों दिन बढ़ता रहा। स्वतन्त्रता-पूर्वक अपनी योग्यता और पराक्रम दिखलाने के लिए उन्हें सब दिशायें खुली हुई थीं। बहमनी राज्य में उन्हे शासन और युद्ध-कला का अनुभव प्राप्त होता गया। मुग़ल बादशाहों ने दक्षिण को विजय करने के जो प्रयत्न किये वे भी मराठो के लिये लाभ-कारी हुए। बिना लड़ाई झगड़े के ही मुसलमानी सत्ता का नाश होते देख उनकी आशायें और भी बढ़ गईं। अकबर, जहांगीर, शाह-जहाँ इन तीन बादशाहों ने दक्षिण को जीत लेने के प्रयत्न किये। पर वे अपना अधिकार बनाये न रह सके। जिस प्रकार मुगलों ने पूरी तरह राजपूतों पर कभी विजय प्राप्त नहीं की उसी प्रकार मराठों पर भी नहीं की। राजधानी के निकट और राजपूताने के ख़ाली रहने के कारण राजपूतों पर मुग़लों का सिक्का जम गया था। पर दक्षिण में ऐसा न हो सका, प्रत्युत् इस देश पर अधि-कार करने के लिए मुगलों ने जो लड़ाइयाँ कीं उससे महाराष्ट्रीयों को नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त होते गये।

स्वराज्य की स्थापना होते समय उसके लिए लोगों के हृदय में स्फूर्ति होनी चाहिए। एक ही व्यक्ति के मन में यह बात आने से कुछ काम नहीं बनता, क्योंकि वह जो प्रयत्न करता है, उसमें दूसरों की सहायता अवश्य दरकार होती है। इतना ही नहीं, पर यदि उसका प्रयत्न सफल हुआ तो उसकी कल्पनायें (ideas) समझ कर उन्हे पूर्ण करने के लिए तथा उनकी पद्धति कहीं छूट न जाय, इसलिए भी अनेक लोगों की सहायता की आवश्यकता रहती है। अतः अकेले शिवाजी से स्वराज्य स्थापन होना कठिन था। उस समय मराठे अलग अलग थे। उनमें एका न था। पर

था क्या—जोश और स्वदेशाभिमान । शिवाजी ने एक कर के उनकी मानसिक शक्तियों का सङ्गठन किया । उन्होंने धर्म का एक आदर्श अपने सामने रक्खा, और देश, काल तथा पात्र के अनुसार स्वयं शक्ति, योग्यता और बुद्धि सम्पादन की। इतना ही नहीं, वे उच्चतम आदर्श और उच्चतम अकांक्षा के मूर्तिमान रूप थे, और मराठो को मिलकर काम करने में उनके हृदयों को बहुत उकसाते रहते थे । उन्होंने महाराष्ट्र शक्ति उत्पन्न नहीं की, वह तो वहाँ थी ही । उन्होंने सिर्फ़ बिखरी हुई शक्ति को एकत्र किया और उच्चतम उद्देश्य के साधन में उसका उपयोग किया । यही उनका आदि गुण था, यही उन्होंने देश की श्रेष्ठ सेवा की, और इसी कारण हमें हृदय से उनका कृतज्ञ होना चाहिए । लोग उन्हें ईश्वरीय नायक की दृष्टि से देखते थे । यह बात अकारण न थी । उन्हें खुद अपने अन्तःकरण में जोश मालूम होता था और वही जोश उन्होंने दूसरों में पैदा किया ।

(ग) धार्मिक परिस्थिति ।

१३, १४, १५, और १६ वीं शताब्दियों में पृथ्वी पर जगह जगह बड़े भारी धार्मिक आन्दोलन हुए। ये आन्दोलन सभी देशों में अत्यन्त स्मरणीय हो गये हैं । क्योंकि उन देशो के इतिहास पर उनका बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है। आश्चर्य की बात है कि जिस समय योरप में धर्म-सुधार के लिये बड़े भयंकर युद्ध हो रहे थे, उसी समय हिन्दुस्थान में भी धर्म-सुधार की बड़ी भारी प्रेरणा उत्पन्न हुई थी । परन्तु यहाँ पर कोई भारी रक्तपात नहीं हुआ । महाराष्ट्रों का राज्य अस्त हो जाने पर मुसलमानों के राज्य में बहुत कष्ट होने लगे । इन कष्टों से बचने के लिये प्रयत्न करने में

महाराष्ट्रीय जब मग्न थे उस समय उन्हें सहायता देनेवाले अनेक साधु-सन्त उत्पन्न हुए। धर्म-सुधार के बिना राष्ट्रोन्नति नहीं हो सकती, धर्म राष्ट्रोन्नति का मुख्य अङ्ग है, यह तत्त्व उस समय सर्व-मान्य था। शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित धर्म अवनति को प्राप्त हो रहा था और लोगों में धर्म के नाम से एक ढोंग उत्पन्न हो गया था। मूर्ति-पूजा के नाम से मनमाने दुराचार हो रहे थे। पारमार्थिक सुख-प्राप्ति की इच्छा से लोग अपने सांसारिक कर्तव्य भूल गये थे। जाति-भेद का विपर्यास हो गया था। विचार, उच्चार और आचार इस संसारावश्यक त्रयी का स्वातन्त्र्य नष्ट हो गया था और ये निरर्थक सामाजिक बन्धनों से जकड़ गये थे। महाराष्ट्र-देश के सन्त कवियों ने इस अनिष्ट निवारण के लिये जो प्रयत्न किये, ऐतिहासिक दृष्टि से उनका बड़ा भारी महत्व है।

यह खयाल रखने की बात है कि सब सन्त कवि थे। चांगदेव, मुकुन्दराज, वहिरं भट्ट, निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव, मुक्ताबाई, नागदेव, गोरा कुम्हार, उद्धवचिद्घन, चोखामेला, रोहिदास, एकनाथ, तुकाराम, नरहरि सोनार, सावता माली, सन्तोष पवार, शेख महम्मद, रामदास, इत्यादि सन्त उनमें प्रधान थे। इन नामों मे अनेक जाति के, अनेक वर्ण के, अनेक पेशे के लोग शामिल हैं। मालूम होता है, पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी सन्मार्ग दिखला कर स्वदेश-सेवा करने में अग्रसर हुई थीं। इनमें ब्राह्मणेतर भी शामिल हैं। इन लोगों ने सर्वसधारण को विद्या और ज्ञान देकर उनकी स्थिति कैसे सुधारी, इसका विवेचन आगे करेंगे। हिन्दू ज्ञान-भण्डार संस्कृत-भाषा रूपी सन्दूक में बन्द था। उसे इन्होंने देशी-भाषा द्वारा सब को प्रदान किया। पर यह न सम-

झना चाहिए कि ये सभी विद्वान् थे। बल्कि लोगों के दोष दिखला कर उन्हें सदुपदेश देने की ओर ही इनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। बहुत विद्वान् न होने पर भी उनकी सरल और सरस बातों का बहुत प्रभाव पढ़ा। मनसा, वाचा, कर्मणा वे एक थे। इस कारण उनका बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। इन सन्त लोगों ने एक बड़ा भारी काम किया। वह यह था कि यहाँ योगादि करनेवाले ब्राह्मणों का जो बड़ा भारी दबाव जनसमूह पर था उसे दूर कर लोगों को स्वतन्त्र विचार करने की ओर लगाया और यह काम विशेषतः ब्राह्मणों ने किया। यह स्मरण रखने के योग्य है कि विचारवान पुरुषों को एक वार विश्वास हो जाने पर वे तात्कालिक स्वहित के मोह से अपनी दृष्टि सङ्कीर्ण नही होने देते और अपने कर्तव्य से पराङ्मुख नहीं होते। इससे यह ज्ञात होता है कि समाज को विचारवान पुरुषो की ही अधिक आवश्यकता है। ईश्वर के आगे सब लोग समान हैं, यह सिखलाने के लिए ब्राह्मण ही अग्रसर हुए।

ज्ञनेश्वर के अनुयायी बहुधा १३ वीं शताब्दी में हुए। अपने धर्म की अवनति हुई है, समाज-सुधार के लिए यह अवनति दूर कर अपना धर्म शुद्ध करना चाहिए, यह कल्पना उन्हीं के मन में उठी और उन्होंने इस धर्म-कार्य के करने में प्रयत्न भी किया। जातिभेद के कारण उत्पन्न होनेवाले उच्च-नीच के भाव दूर करने में उन्होंने जितने प्रयत्न किये, उतने शायद ही और कभी हुए होंगे। भगवद्गीता का मर्म देशी-भाषा के द्वारा समझानेवाले ज्ञानेश्वर और लेटिन वाइविल का अँगरेजी में अनुवाद करनेवाले जान वाइक-लिफ (Morning Star) इन दोनों में बहुत कुछ समानता है।

एकनाथ के अनुयायियों का विकाश सोलहवीं शताब्दी में

हुआ। महाराष्ट्र में स्वराज्य-स्थापना की ओर इन्हीं लोगों के मुख्य प्रयत्न हुए। ये शिवाजी के समकालीन थे। पुराना स्वराज्य अस्त होने पर इधर उधर मुसलमानी प्रभुत्व आरम्भ हुआ, और उसके कारण जो क्लेश होने लगे उनका ज्ञान इन लोगों को जितना हुआ उतना ज्ञानेश्वरानुयायियों को न हुआ था। उसी प्रकार साधुत्व और कवित्व इन दो गुणों का जोर इनमें ज़ियादह था। संकृस्त ग्रन्थों के मराठी में तर्जुमे कर लोगों में ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिये—यह कल्पना प्रथम इन्हीं लोगों के हृदय में उत्पन्न हुई और इस ओर इन्होने उद्योग करना आरम्भ किया। स्वधर्म की अवनति होने के कारण लोगों को नीतिमार्ग दिखलाने की उत्कण्ठा इन लोगों में विशेष थी। रामदास इसी पन्थ के थे, पर उनका काम कुछ और ही था। इस कारण उनके विषय में स्वतन्त्ररूप से आगे विचार करेंगे।

सन्त लोगों के उपदेशों में से कुछ उदात्त-तत्व और उन लोगों ने धर्म-सुधार के लिये कौन कौन से कार्य किये, यह समझ लेना आवश्यक है। पाश्चात्य देशों की धर्म-जागृति का इतिहास जिसने पढ़ा होगा उसे यह ज्ञान हो जायगा कि इन दोनों स्थानों की जागृति मे बहुत कुछ समानता थी।

(१) धर्म-शिक्षण और धर्म-संरक्षण के काम आचार्य कहलानेवाले ब्राह्मणो के हाथ में थे। ये ब्राह्मण बहुधा यज्ञ-यागादि करने में निमग्न रहते थे और इसीसे उनका प्रभाव दूसरी जातियों पर पड़ता था। ब्राह्मण जन्म से ही उच्च माने जाने के कारण उनके बतलाये हुए कर्म-मार्ग को छोड़कर दूसरे साधनों से भी ईश्वर-प्राप्ति हो सकती है, यह लोगों को मालूम नहीं था। इस

स्थिति को दूर करने का प्रयत्न सन्त जनों ने बहुत कुछ किया। उन्होंने लोगों को ऐसे उदात्त विचार सिखलाये कि भक्ति और सच्चे मन से ईश्वरोपासना करने ही से हर किसी को ईश्वर प्राप्त होता है। एक विशेष मार्ग के सिवा अन्य मार्गों से भी ईश्वर प्राप्ति हो सकती है। किसी विशेष कुल में जन्म लेने से श्रेष्ठत्व नहीं मिलता। ईश्वर को सब प्राणी समान प्रिय हैं और अपने निज के उदाहरणों से उन्होंने ये बातें लोगों के मन में अंकित कर दीं। पाश्चात्य देशों में ईसाई-धर्म के गुरु पोप और उनके अनुयायियों ने यह क्रम चलाया था कि हम जनता और परमेश्वर के बीच में मध्यस्थ हैं। वे ऐसा ढोंग करके लोगों से धन लेकर पाप-मोचन की रसीद लिख देते थे। ऐसी स्थिति में लूथर प्रभृति धर्म-सुधारक उत्पन्न हुए और उन्होंने पोप का भण्डा-फोड़ कर दिया। महाराष्ट्र की और योरप की इन दोनों बातों में बहुत कुछ समानता दिखायी देती है।

(२) जाति-व्यवहार को धर्म के बन्धनों से दूर करना धर्म-सुधार का बड़ा भारी काम है। साधुओं में सब जाति के लोग शामिल थे और वे अब तक सबको समान पूज्य हैं। इसी से उनके मार्ग का श्रेष्ठत्व सिद्ध होता है। इन सज्जनों ने लोगों को ऐसे विचार सिखलाये कि ग़रीब और धनवान, छोटा और बड़ा, ब्राह्मण और अब्राह्मण ये भेद परमेश्वर को पसन्द नहीं हैं। सच्चा बड़प्पन नीति और ज्ञान से प्राप्त होता है. फिर कोई मनुष्य किसी भी जाति का हो और चाहे जो धन्धा क्यों न करे, उसकी दृष्टि में समान है। उनके शुद्ध व्यवहार और निष्ठा से लोगों पर उनका प्रभाव खूब पड़ा।

(३) सन्तों ने लोगों को ये बातें जँचा दीं कि इसी प्रकार योग-साधन, सन्यास-ग्रहण, मठ-वास इत्यादि ईश्वर-प्राप्ति के प्रचलित मार्ग विशेष-रूप से आवश्यक नहीं हैं और संसार के सब काम करते हुए भी ईश्वर-प्राप्ति हो सकती है, योग-साधन के नाम से संन्यासवृत्ति का आवरण पहन कर अथवा मठवास का ढोंग रचकर नीच लोग अत्याचार करते थे*। इस स्थिति को दूर करने का श्रेय इन्हीं सन्तों को है।

(४) इन्होंने एक बड़ा भारी और लोकोपकारी काम किया है। संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद कर उसका ज्ञान सब को प्राप्त कर दिया। इस प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जाने से लोगों में स्वतंत्र विचार करने की शक्ति आगई। योरप में ग्रीक और लैटिन भाषाओ से वहाँ की देशी भाषाओं में सोलहवी शताब्दी में बहुत उल्थे हुए। इन दो बातों में भी साम्य है।

(५) परमेश्वर के विषय में उदात्त और योग्य धारणा लोगों के मन में उत्पन्न कर देने का श्रेय भी इन्हीं सज्जनों को है। परमेश्वर के विषय में ईसाइयों और आर्य लोगों की भावना में बड़ा अन्तर है। ईसाइयों का ईश्वर-प्रमादियों को दण्ड देने वाला है, पर हमारे यहाँ उसका स्वरूप मा-बाप, भाई-बन्धु इत्यादि और न्याय और दण्ड करने के समय भी इन्हीं सम्बन्धों की दृष्टि से प्रीति रखनेवाला समझा जाता है। इन सन्त-जनों के उपदेशो में यही भावना झलकती है और लोगो को अनुभव में जगह जगह पर दिखाई देता है कि ईश्वर दयालु है, वह प्रेमशील है, वह भक्तों के सङ्कट

---

* आजकल सारे हिन्दुस्थान में यह स्थिति हो गई है—लेखक।

दूर करने के लिये दौड़ कर आता है, उनके साथ खाता है, बोलता है। कर्मोपासक ब्राह्मण की कल्पना में भी परमेश्वर का स्वरूप इतना स्नेहमय नहीं है।

(६) ईश्वर-प्राप्ति के अनेक मार्ग थे और हैं, पर भक्ति-मार्ग के समान सुलभ दूसरा मार्ग नहीं है। इससे लोगों में एक तरह की एकता उत्पन्न होती है। इस भक्ति के ज़ोर पर महाराष्ट्रीय सन्तों ने लोगों को सन्मार्ग दिखलाया। संसार के कष्ट और चिन्ताओं से लोगों की रक्षा करने के लिए एकान्तवास सेवन करने से राष्ट्र को जो दुर्बलता प्राप्त होती है उसे दूर करने के लिये संसार का सब काम करते हुए भी परमार्थ साधन का सच्चा मार्ग इन सन्तों ने लोगों को दिखलाया और इससे राष्ट्र को लाभ पहुँचा।

(७) योरप में जिस प्रकार मूर्ति-पूजा की पद्धति नष्ट हुई, उसी प्रकार थोड़ा बहुत यहाँ भी हुआ। पर यहाँ पर मूर्तियां भङ्ग नहीं हुईं। यहाँ के लोग कहते थे, किसी भी देवता को भजने से काम चल सकता है; क्योंकि वे एक ही परमेश्वर के रूप हैं। अतएव प्रत्येक जन अपने उपास्य देवता की भक्ति करता था। मूर्ति-पूजा का जो निन्दनीय अर्थ आजकल होता है, उस अर्थ में वे मूर्तिपूजक नहीं थे। धर्म के नाम से बलि आदि देने की बातों का उन सन्तोंने अत्यन्त निषेध किया है। सब देवता एक ही परमेश्वर के स्वरूप हैं, इस कारण किसी की भी निन्दा करना वे अनुचित समझते थे। परन्तु इसी अर्थ से कि किसी भी देवता में दृढ़ श्रद्धा रहने ही से महत् कृत्य हो सकते हैं, इसलिए मूर्ति में विश्वास रखना ईश्वर-प्राप्ति का एक मार्ग है, ऐसा कहने वाले लोग मूर्ति-पूजक कहला सकते हैं।

सन्त जनों के उद्योगों का परिणाम यह हुआ। इस प्रकार उन्होंने शिक्षा देकर राष्ट्रोन्नति का एक मुख्य अङ्ग तैयार किया। परस्पर जातियों का तीव्र द्वेष शान्त हुआ। ब्राह्मणों की तरह शूद्रों को भी सामाजिक उन्नति करने और तत्वज्ञान प्राप्त करने के लिए अवसर प्राप्त हुआ। सांसारिक कर्तव्यों मे स्त्रियों को प्रधानता प्राप्त हुई और कौटुम्बिक व्यवहार पवित्र होने लगा। यह राष्ट्र परोपकारशील, सहनशील और आपस में मेल करने के योग्य वन चला। जप तप यज्ञ-याग, योगाभ्यास आदि बातों में लोगों के समय और शक्ति का जो व्यय होता था वह बन्द होने लगा। विचार और आचार का विरोध कम होने लगा। संन्यास-वृत्ति धारण करने के समान लोग अपने संसारिक कर्तव्यों की ओर पूर्ण ध्यान न देते थे और ऐहिक सुख के विषय में लापरवाह होते चले गये थे। यह दोष इन सन्तों के उपदेशों से दूर हो गया। सांसारिक कर्तव्य करते हुए भी अपना और दूसरे का हित-साधन करना ही उत्तम धर्म, पुरुषार्थ और जन्म की सार्थकता है—ऐसी प्रवृत्ति लोगों की हो चली और इस कारण उनमें स्वाभिमान उत्पन्न होने लगा। विद्या और पाण्डित्य का जो निरर्थक शोर मचा हुआ था उसका प्रतिकार हुआ। सारांश यह कि स्त्री, पुरुष सब जाति और श्रेणी के लोग एक दिल से काम करने लगे। इस कारण स्वराज्य प्राप्त करने की तैयारी धड़ाके से होने लगी। इन्हीं कारणों से शिवाजी को स्वराज्य स्थापन करने की शक्ति प्राप्त हुई। एक ही मनुष्य कोई काम करने योग्य हो और उसके साथ काम करने के लायक दूसरे लोग न हों तो उसकी असामान्य शक्ति का कुछ भी उपयोग नहीं होता; वल्कि सब साधन ठीक होने पर उनका उपयोग

करने वाला कोई-न-कोई उत्पन्न हो ही जाता है। यह कहावत बहुत कुछ सत्य है कि महाराष्ट्रीयों के उदय के समय अगर शिवाजी न पैदा हुए होते तो अन्य कोई इस बात के लिए आगे आ ही जाता। परन्तु शिवाजी ने इन साधनों का पूरा उपयोग किया, यह बात ध्यान में रखने योग्य है।

यह सब पढ़कर भी यदि कोई पूछे कि इस धार्मिक उन्नति का मतलब क्या था ? तो उन्हें हम यही उत्तर देंगे कि इतिहास क्या वस्तु है; यह आप नहीं समझते। सामाजिक और राजकीय उन्नति का धार्मिक उन्नति से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर की जब उन्नति होती है तब केवल हाथ अथवा केवल पाँव या केवल छाती वा केवल गले या किसी एक अवयव की पुष्टि नहीं हो सकती। शरीर की उन्नति का यही अर्थ है कि सब अङ्ग समान उन्नत हों। अगर एक ही अङ्ग किसी कारण से अधिक बलवान् हो तो यही कहना होगा कि शरीर पुष्ट होने के बदले दुर्बल हुआ, क्योंकि एक अङ्ग बलिष्ठ होने से दूसरे अङ्ग शिथिल पड़ जाते हैं और वे रोगी हो जाते हैं। उनके रोगी होने से शरीर रोगी हो जाता है और उन्नत अङ्ग भी कमज़ोर पड़ जाता है। ठीक यही वात सामाजिक, राजकीय और धार्मिक उन्नतियों के विषय में घटती है। जहाँ तक हमें इतिहास से ज्ञात हुआ है, यही पता लगता है कि धार्मिक उन्नति का राजकीय उन्नति से बड़ा भारी सम्बन्ध रहा है। यह एक ऐतिहासिक बात है और तात्विक दृष्टि से भी प्रमाणित है। इसलिए इसमें सन्देह करने का कोई कारण दिखायी नहीं देता।

कुछ लोग कहते हैं कि शिवाजी के कार्य से इस धार्मिक

उन्नति का कोई कार्यकारण-सम्बन्ध नहीं था। इन लोगो के कहने का यही सारांश है कि शिवाजी ने अपना कार्य आप ही किया। उसे किसी से न सहायता मिली, न उसने ली। इस विषय का विचार हम आगे चलकर विशेष रूप से करेंगे। यहाँ पर इतना बतला देना आवश्यक है कि इन सन्तों के द्वारा और उनके उपदेशों और कविताओं से उस समय उन्नति हुई और आज भी हो रही है। यदि यह मान लिया जाय कि उनकी कविताओं से, आदर्श से, उपदेशों से, केवल धार्मिक और नैतिक उन्नति ही हुई, तो भी बहुत है। क्योंकि जैसा ऊपर कह चुके हैं मनुष्य स्वतन्त्र रूप से विचार करने लगे, उसका आचरण शुद्ध होने लगे और वह सच्चे धर्म का निष्टापूर्वक पालन करने लगे, तो ऐसा करना कोई साधारण बात नहीं है। जो शुद्ध आचरण और निष्ठा धर्म में देख पड़ेगी, वही शुद्ध आचरण सब जगह मिलेगा, और वही निष्ठा की शक्ति सब जगह बनी रहेगी। यह बात ही दूसरी है कि शक्तियाँ चाहे जिस मार्ग से प्राप्त हुई हों। इस शक्ति का उपयोग आप चाहे जिस जगह कर लीजिए। यह शक्ति इन सन्तों ने उत्पन्न की और उसका उपयोग शिवाजी ने राजकीय उन्नति में किया, इतना मान लिया जाय तो भी बहुत है। ऐसा अगर न मानें तो यही कहना पड़ेगा कि शिवाजी एक बाग़ी था, उसने लोगो को बाग़ी बनाया, और चार दिन धूम धाम कर चला गया। पर यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से असत्य है, और इसी कारण हम आज शिवाजी को अद्वितीय योग्य पुरुष मानते हैं। बिना इस धार्मिक उन्नति के महाराष्ट्र के इतिहास का कोई अर्थ ही नही है। इसलिए जो ऊपर लिखे हुए आक्षेप करें उन्हे चाहिए कि वे दुनिया के

पुराने और नये समस्त इतिहास का अध्ययन करें और फिर कुछ कहने की कृपा करें।

अब यदि कोई कहे कि "यह बात तो ठीक है पर शिवाजी की योग्यता का इससे क्या सम्बन्ध है।" तो इस प्रवाद का भी समाधान किया जायगा।

तीसरा परिच्छेद

शिवाजी की समकालीन परिस्थिति

शिवाजी के जन्म के पूर्व की क्या परिस्थिति थी, इसका विचार कर चुके। अब शिवाजी की समकालीन परिस्थिति कैसी थी और उसका उस पर क्या परिणाम हुआ, इसीका विचार करना है। शिवाजी की समकालीन परिस्थिति के हमने ६ भाग किये हैं—(१) राजकीय स्थिति (२) धार्मिक स्थिति (३) जीजा बाई के शिक्षण का परिणाम (४) शहाजी के चरित्र का परिणाम (५) दादोजी कोंडदेव का शिक्षा का परिणाम (६) रामदास के शिष्यत्व का परिणाम।

राजकीय परिस्थिति के विषय में यहाँ कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। राजकीय परिस्थिति में कोई विशेष फेर फार नहीं हुआ। वह जैसी पहले थी वैसी ही उन के काल में बनी रही। जो कुछ परिवर्तन हुआ वह सिर्फ इतना ही था कि औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार होकर आया था। इस राजपुत्र ने दक्षिण के टुकड़े नोचने का प्रयत्न किया था। इससे सिर्फ यही ज्ञात हुआ

होगा कि दक्षिण के राज्यों में कोई ज़ोर नहीं है—प्रयत्न करने पर धीरे धीरे महाराष्ट्र स्वतन्त्र हो सकता है। धार्मिक परिस्थिति का भी वही क्रम चला था। शिवाजी पर रामदास स्वामी का विशेष प्रभाव पड़ा, इसका विचार हम यहाँ स्वतन्त्र रूप से करेंगे।

(२)—किस परिस्थिति का और किन कारणों का प्रभाव शिवाजी पर अधिक पड़ा इसका निर्णय करना कठिन है, पर इतना कह सकते हैं कि उनकी माता का जितना प्रभाव शिवाजी के समस्त जीवन पर पड़ा, उतना और किसी का न पड़ा होगा।

जीजाबाई अच्छे कुल में उत्पन्न हुई थी। उसके पिता के और पति के बीच राजकीय बातों के कारण झगड़ा हो जाने से पति ने उसे छोड़ दिया। वह बड़ी मानिनी थी। पति के त्याग देने पर पिता के घर न जाकर वह स्वतन्त्रतापूर्वक रहने लगी। जिस समय उसका पिता जादवराव अपने जामाता को पकड़ने के लिए पीछा किये चला जा रहा था, उस समय उसके साथ जीजाबाई भी थी और वह उस समय गर्भवती थी। जब शहाजी ने देखा कि पत्नी को लेकर भागना कठिन है तब उसने उसे बीच में छोड़ दिया। इसके बाद जीजाबाई ने शिवनेर क़िले में आश्रय लिया। इस विपन्नावस्था का प्रभाव जीजाबाई के मन पर बड़ा भारी पड़ा। वह पूर्व ही से बड़ी दृढ़ स्त्री थी। पति और पिता दोनों के त्याग देने पर जब शिवाजी का जन्म हुआ तब उसे कुछ आशा उत्पन्न हुई। साहस, निश्चय, धैर्य, विचारशीलता इत्यादि गुण उसके मन में, सङ्कटों की परम्परा के कारण उत्पन्न हुए और इन गुणों का प्रवेश शिवाजी के हृदय में स्वभावतः ही हो गया। अब उसे यह आशा उत्पन्न हुई कि शिवाजी आगे बड़ा होकर नाम कमावे

और मुझे अपने जन्म की सार्थकता प्राप्त हो। यानी स्वभाव के कारण उसके मन में कभी यह खयाल उठता कि मैं स्वतन्त्र रीति से मान-धन प्राप्त करूँ। उसके लिये शिवाजी ही उसकी एक मात्र आशा—एक मात्र आधर थे। इसलिए उसका अपने पुत्र पर निःसीम प्रेम था। शिवाजी भी अपनी माता से अतिशय प्रेम करते थे। अपनी माता की सलाह लिए विना वे कोई काम न करते थे, और इस व्रत का उन्होंने जन्म भर पालन किया। माता भी उचित सलाह देती और उनके कार्य में वृथा विघ्न न डालती थी। अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए उसने शिवाजी का मन शिक्षा देकर शिक्षित किया। पुराने वीरों की कथायें कहना और सुनाना तो उसका क्रम ही था, पर रामायण, महाभारत में से भी वह अनेक कथायें सुनाया करती थी। इन बातों को सुनकर आपही शिवाजी रोमाञ्चित हो जाता था और उन वीरों के कर्त्तव्यों के सदृश कृत्य करने का निश्चय मन ही मन कर लेता। शिवाजी का साहसी स्वभाव देखकर माता को अनुमान होने लगा था कि यदि अच्छी शिक्षा इसे मिले तो यह आगे अच्छा नाम पैदा करेगा। वह शिवाजी से हमेशा कहा करती–देवी ने ऐसे कई दृष्टान्त दिये हैं कि "शत्रु का नाश करके कुल का उद्धार करनेवाला शककर्ता हमारे कुल में पैदा होनेवाला है। पर देखें यह वात कब सत्य होती है ?" इसका कितना भारी प्रभाव हुआ होगा, यह समझदार मनुष्य को वतलाने की आवश्यकता नहीं। जीजाबाई वीराङ्गना थी और स्वावलम्बन के सिवा उसके पास कोई अन्य उपाय न था। उसे यह वात जँच सी गई थी कि मुझे इस दुनिया में कोई विशेष महत्वपूर्ण काम करना है। इसी कारण वह ईश्वर में

विश्वास रखकर शिवाजी को इस महान् कार्य के लिए तैयार कर रही थी। धीरे धीरे शिवाजी का मन इन बातों की ओर लग चला और वाल्यावस्था से ही उनके मन में निश्चय होने लगा कि हम महान् कार्य करेंगे। जगत् में जितने महान् पुरुष उत्पन्न हुए हैं उनका जीवनचरित्र बहुधा माता की शिक्षा से ही सङ्गठित हुआ है। नेपोलियन, सिकन्दर, अकबर सभी पर उनकी माताओं का प्रभाव पड़ा है। पर यदि सचमुच किसी का जीवन केवल माता ही की शिक्षा से अधिकतर उच्च और कार्यक्षम बना है तो शिवाजी ही का है।

(३) जीजावाई के बाद दादोजी कोंडदेव की शिक्षा का प्रभाव शिवाजी के मन पर क्या पड़ा, उसका विचार करना उचित है। दादोजी शहाजी का पुराना नौकर था और पूना के पास की उसकी जागीर की देखभाल करता था। पीछे से शिवाजी को लेकर उनकी माता भी पूने में आकर रहीं। इससे शिवाजी पर भी देख भाल करने का काम उस पर पड़ा। इस पुरुष ने दो काम किये (१) पूना की जागीर की सुव्यवस्था (२) शिवाजी की शिक्षा। दादोजी व्यवस्था करने में बहुत होशियार था। जागीर की देख-भाल हाथ में लेने के पहले उसकी दशा बहुत बुरी थी। दुष्काल, युद्ध और वन्य पशुओं के कारण सब ज़मीन वीरान पड़ी थी। कुछ खेती न होती थी परन्तु दस साल में ही उसने अपनी व्यवस्था से यह जागीर ऐसी कर दी कि उसका स्वामी फिर अधिक सेना रख सका, अपने क़िले मज़बूत कर सका, और सब विपन्नावस्था जाती रही।

दूसरा काम, शिवाजी की शिक्षा का, उसने उतनी ही योग्यता से किया! दादोजी नेक, ईमानदार, धार्मिक और लोक-

हितैषी पुरुष था। पहले पहल तो उसे शिवाजी की उच्छृङ्खलता ठीक न मालूम होती थी। पर धीरे धीरे उसे मालूम होने लगा कि शिवाजी के साथ साधारण नियम से व्यवहार करना ठीक नहीं–इसे तो लोकोत्तर समझना चाहिए। उसने उस वीर को योग्य और पूरी शिक्षा दी थी। दादोजी इतना पवित्र और धर्मभीरु था कि एक बार अपने स्वामी के वृक्षों में से एक आम तोड़ने की उसे इच्छा हुई तो उसके बाद उसने अपना हाथ ही तोड़ डालना चाहा। आख़िर बड़ी कठिनाई से हाथ न तोड़ने पर सहमत हुआ। परन्तु उस हाथ की अस्तीन जन्म भर आधी रक्खी। इस पवित्रता का प्रभाव शिवाजी पर कितना हुआ होगा, यह बतलाना आवश्यक नहीं, दादोजी की यह इच्छा थी कि शहाजी के समान यह भी किसी भारी राजा का मनसबदार वगैरः कुछ हो। उसे शिवाजी के हृदय की भावनाओं का कुछ अन्दाज़ा न था। पर इस पुरुष ने तरुण शिवाजी की उच्छृङ्खलता को बहुत नरम किया और इसका परिणाम भी बड़ा अच्छा हुआ। शिवाजी की भावना के अनुसार कार्य करने पर वह बड़ी कठिनाई से सहमत हुआ और मरते समय शिवाजी को वह उत्तम उपदेश दे गया। दादोजी की ज़मीन के महसूल की और राज्य की व्यवस्था इतनी उत्तम थी कि शिवाजी ने उसी पर अपनी इमारत खड़ी की। सारांश यह कि इस पुरुष ने भी शिवाजी का चरित्र बनाने में बहुत बड़ा काम किया था।

(४) अब शहाजी के चरित्र का क्या परिणाम हुआ, इस का विचार करना उचित है। बहुत कम लोगों ने उसका विचार किया है और इसका सम्बन्ध राजकीय अवस्था से भी है।

शहाजी बहुत योग्य पुरुष था। शूर, साहसी, निश्चयी, ईमानदार तो वह था ही, पर वह बड़ा भारी राजकार्य-कुशल भी था। इतना कह देना बस है कि वह मलिक अम्बर का प्रतिस्पर्धी था। उसने कई निज़ामशाही के राजाओं को गद्दी पर बिठलाया और अहमदनगर मुग़लों के हाथ में निकल जाने तक वह उनसे लड़ता रहा। उसने अनेक राज्यों का उदय और अस्त देखा होगा। ऐसे चरित्र का शिवाजी पर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ा होगा। शहाजी 'पुराने' पन्थ का पुरुष था। स्वतन्त्रता की आकांक्षा उसमें उत्पन्न नहीं हुई थी। निज़ामशाही डूब जाने के बाद उसने स्वतन्त्र राज्य की रचना करने का प्रयत्न नहीं किया। पर उसे भी कभी कभी स्वतन्त्रता के विचार आही जाते थे। इन विचारों का प्रभाव युवा पुत्र के मन पर न हुआ होगा, यह कहना ठीक नहीं।

दूसरी बात यह है कि शहाजी के जीते जी शिवाजी के कृत्यों को कोई स्थिर स्वरूप नहीं मिला था; क्योंकि पिता के जीते जी 'राजा' बन जाना, अथवा अपने नाम के सिक्के निकालना ठीक नहीं मालूम होता था। पिता की मृत्युके बाद उसे अपने कृत्यों को व्यवस्थित रूप देना पड़ा। शिवाजी जितना मातृभक्त था, उतना ही पितृभक्त भी था।

(५) अब बड़ा विवादात्मक प्रश्न शिवाजी और रामदास के परस्पर-सम्बन्ध का है।

एक पक्ष का कहना है कि शिवाजी पर रामदास का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दूसरा पक्ष कहता है कि धर्म और स्वराज्य का उद्धार करने के लिए शिवाजी को रामदास ही ने तैयार किया। हमारी समझ में ये दोनों पक्ष सत्य को अपनी अपनी ओर खींच

रहे हैं, जो इन दोनों के बीच में है। इस बात का निर्णय हम यही जानकर कर सकते हैं कि शिवाजी और रामदास की भेंट कब हुई।

शिवाजी को बचपन में जीजा बाई और दादोजी कोंडदेव रामायण और महाभारत की कथायें सुनाया करते थे, यह हम ऊपर बताही चुके हैं। जब शिवाजी बड़ा हुआ तब साधु-पुरुषों के कथा-कीर्तन सुनने जाने लगा। शिवाजी के मन की वृत्ति इतनी धार्मिक हो गई थी कि पहुँच के भीतर जहाँ कहीं कथा-कीर्तन होता वहाँ ज़रूर जाता था। जब उसने तुकाराम बावा से भेंट की तो इस साधु पुरुष ने इस तरुण को स्वामी रामदास के पास भेज दिया। शिवाजी पर रामदास का कितना प्रभाव हुआ, इसका हम निश्चय अभी नहीं कर सकते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि इसके वाद शिवाजी और रामदास, राजकीय और धार्मिक गुरु-शिष्य के नाते से हमेशा बंधे रहे।

इससे यह बात स्पष्ट है कि शिवाजी अपने कार्य के लिए पहले ही तैयार हो चुके थे, उन्हें ज्ञात हो गया था कि राज्य का, धर्म का, और देश का उद्धार करना आवश्यक है। इस बात के लिए उनका मन पक्का भी हो गया था, यह कहा जा सकता है। इतना ही नहीं वरन् कार्य किस प्रकार शुरू करना चाहिए, इसका भी वे निश्चय कर चुके थे। शिवाजी ने पहला क़िला सन् १६४६ में लिया। इतना कार्य करने के पहले वे अपने मनका निश्चय दो तीन वर्ष पहले कर चुके होंगे। किस मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए, यह निश्चय भी उनके मन में हो गया होगा। राजकीय और धार्मिक परिस्थिति के निरीक्षण से उनके मन में इस बात

का अङ्कुर उगा होगा। उसे उनकी माता ने सेचन किया और पूर्वोक्त दो पुरुषों ने उन्हें योग्य शिक्षण दिया। इन सब बातों से उनका मन हमेशा इस महाकार्य के लिए तैयार होता चला जा रहा था। ऐसे समय में रामदास स्वामी से भेंट हुई। अब कोई कहेंगे, तो फिर आप सारा का सारा श्रेय शिवाजी को दिये डालते हैं, स्वामी रामदास के लिए कुछ भी नहीं छोड़ते। परन्तु ज़रा ठहरिए, उसका उत्तर हम शीघ्र ही देते हैं।

महाराष्ट्र की राजकीय और धार्मिक परिस्थिति की आलोचना तो हम कर ही चुके हैं। यह भी बतला चुके हैं कि राज्य, देश, स्वतन्त्रता और धर्म की जहाँ तहाँ पुकार मच रही थी। ये विचार शिवजी के मन में ही क्या, वरन् प्रत्येक साधु, सन्त, गरीब, श्रीमान्, गृहस्थी, सन्यासी, सब के ही मन में उठ रहे थे। शिवाजी को इस बात का श्रेय है कि उनमें इस परिस्थिति के उपयुक्त योग्य गुण थे। उन्हें अन्तःकरण से जान पड़ता था कि यह कार्य उन्हीं का है और यह ईश्वरीय सङ्केत है और सबसे भारी बात यह है कि इस महापुरुष ने इस परिस्थिति का योग्य रीति से निःस्वार्थ पुरुष की तरह उपयोग किया। फिर इसमें कौन आश्चर्य की बात है कि रामदास को यह जंचने लगा था कि राज्य, का, धर्म का, स्वतन्त्रता का उद्धार होना चाहिए। इस स्वामी को भी यह विचार स्वतन्त्र रीति से जँचने लगे थे। रामदास स्वामी तब से इस बात के प्रयत्न में लगे थे। वे सच्चा धर्म फैलाते, लोगों की नीति सुधारते और स्वराज्य और स्वतन्त्रता की अभिलाषा लोगों के मन में उत्पन्न करते हुए अपना भ्रमण कर रहे थे। इसी कारण तुकाराम बावा ने शिवाजी को रामदास के पास

रहे हैं, जो इन दोनों के बीच में है। इस बात का निर्णय हम यही जानकर कर सकते हैं कि शिवाजी और रामदास की भेंट कब हुई।

शिवाजी को बचपन में जीजा बाई और दादोजी कोंडदेव रामायण और महाभारत की कथायें सुनाया करते थे, यह हम ऊपर बताही चुके हैं। जब शिवाजी बड़ा हुआ तब साधु-पुरुषों के कथा-कीर्तन सुनने जाने लगा। शिवाजी के मन की वृत्ति इतनी धार्मिक हो गई थी कि पहुँच के भीतर जहाँ कहीं कथा-कीर्तन होता वहाँ ज़रूर जाता था। जब उसने तुकाराम बाबा से भेंट की तो इस साधु पुरुष ने इस तरुण को स्वामी रामदास के पास भेज दिया। शिवाजी पर रामदास का कितना प्रभाव हुआ, इसका हम निश्चय अभी नहीं कर सकते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि इसके बाद शिवाजी और रामदास, राजकीय और धार्मिक गुरु-शिष्य के नाते से हमेशा बंधे रहे।

इससे यह बात स्पष्ट है कि शिवाजी अपने कार्य के लिए पहले ही तैयार हो चुके थे, उन्हें ज्ञात हो गया था कि राज्य का, धर्म का, और देश का उद्धार करना आवश्यक है। इस बात के लिए उनका मन पक्का भी हो गया था, यह कहा जा सकता है। इतना ही नहीं वरन् कार्य किस प्रकार शुरू करना चाहिए, इसका भी वे निश्चय कर चुके थे। शिवाजी ने पहला क़िला सन् १६४६ में लिया। इतना कार्य करने के पहले वे अपने मनका निश्चय दो तीन वर्ष पहले कर चुके होंगे। किस मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए, यह निश्चय भी उनके मन में हो गया होगा। राजकीय और धार्मिक परिस्थिति के निरीक्षण से उनके मन में इस बात

का अङ्कुर उगा होगा। उसे उनकी माता ने सेचन किया और पूर्वोक्त दो पुरुषों ने उन्हें योग्य शिक्षण दिया। इन सब बातों से उनका मन हमेशा इस महाकार्य के लिए तैयार होता चला जा रहा था। ऐसे समय में रामदास स्वामी से भेंट हुई। अब कोई कहेंगे, तो फिर आप सारा का सारा श्रेय शिवाजी को दिये डालते हैं, स्वामी रामदास के लिए कुछ भी नहीं छोड़ते। परन्तु ज़रा ठहरिए, उसका उत्तर हम शीघ्र ही देते हैं।

महाराष्ट्र की राजकीय और धार्मिक परिस्थिति की आलोचना तो हम कर ही चुके हैं। यह भी बतला चुके हैं कि राज्य, देश, स्वतन्त्रता और धर्म की जहाँ तहाँ पुकार मच रही थी। ये विचार शिवजी के मन में ही क्या, वरन् प्रत्येक साधु, सन्त, गरीब, श्रीमान्, गृहस्थी, सन्यासी, सब के ही मन में उठ रहे थे। शिवाजी को इस बात का श्रेय है कि उनमें इस परिस्थिति के उपयुक्त योग्य गुण थे। उन्हें अन्तःकरण से जान पड़ता था कि यह कार्य उन्हीं का है और यह ईश्वरीय सङ्केत है और सबसे भारी बात यह है कि इस महापुरुष ने इस परिस्थिति का योग्य रीति से निःस्वार्थ पुरुष की तरह उपयोग किया। फिर इसमें कौन आश्चर्य की बात है कि रामदास को यह जंचने लगा था कि राज्य, का, धर्म का, स्वतन्त्रता का उद्धार होना चाहिए। इस स्वामी को भी यह विचार स्वतन्त्र रीति से जँचने लगे थे। रामदास स्वामी तब से इस बात के प्रयत्न में लगे थे। वे सच्चा धर्म फैलाते, लोगों की नीति सुधारते और स्वराज्य और स्वतन्त्रता की अभिलाषा लोगों के मन में उत्पन्न करते हुए अपना भ्रमण कर रहे थे। इसी कारण तुकाराम बाबा ने शिवाजी को रामदास के पास

भेजा। बस, कार्यकर्त्ता और कार्योत्तेजक की भेंट हो गई—योद्धाओं को तैयार करनेवाले का और इन योद्धाओं को लेकर रणभूमि पर लड़नेवाले सेनापति का सम्मिलन हो गया—मेज़िनी और गोरीवाल्डी एकत्र हो गए। इसके बाद शिवाजी रामदास की सम्मति सदा लिया करते थे और स्वामी जी भी इस तरुण पुरुष को सदा योग्य सलाह देते और उत्तेजित करते थे। शिवाजी का मन यद्यपि उच्च विचारों से भरा था, धर्म से संस्कृत था, तथापि आखिर वे एक संसारी प्राणी ही थे, मामूली गृहस्थ को तो संसार के बखेड़े से विरति उत्पन्न हो जाती है, समय समय पर हताश हो जाना पड़ता है और कार्य-शिथिलता उत्पन्न हो जाती है, फिर छोटी सी जागीर से महाराष्ट्र का तमाम राज्य फेर लेना कितना कठिन कार्य है, इसका विचार भी करना कठिन है। इस मौके के लिए रामदास स्वामी की आवश्यकता थी! वे हमेशा उपदेश देकर उन्हें उत्तेजित करते रहे। शिवाजी को कई बार उपरति उत्पन्न हुई, राज्यपाट छोड़कर ईश्वर भजन में काल बिताने की इच्छा उन्होंने कई बार प्रदर्शित की, ऐसे मौक़े पर रामदास स्वामी शिवाजी को बतलाया करते थे कि तुम्हारा यही सच्चा धर्म है कि तुम देश का, स्वराज्य और धर्म का उद्धार करो और इसी में तुम्हें उच्चगति प्राप्त होगी। इसीलिए परमेश्वर ने तुम्हें यहाँ भेजा है। इस प्रकार शिवाजी से बराबर कार्य करवाते रहे। इससे यह न समझना चाहिए कि उन्हें कार्य करने की योग्यता न थी। नहीं, कार्य करने की योग्यता न रहती तो यह कार्य सिद्ध ही न होता, पर समय समय पर उत्तेजित करना और कार्य करते समय फल की आकांक्षा न रखना, यही वे बतलाते रहे। रामदास स्वामी का

कार्य प्रत्यक्ष न था, वे न सिपाही एकत्र करते थे, न लड़नेकी शिक्षा किसी को देते थे। उनका कार्य अप्रत्यक्ष था। वे लोगों की नीति सुधारते, सच्चे धर्म की कल्पना करा देते, और यह प्रतिबिम्बित करते जाते थे कि धर्म का उद्धार स्वराज्य के विना न होगा। स्वामीजी के कार्य का महत्व यही है और इसी नाते से शिवाजी का और उनका सम्बन्ध रहा। उन्होंने प्रत्यक्ष उपदेश किसी को दिया हो तो वह शिवाजी को ही दिया। वे निरीच्छ थे और अपना काल ईश-सेवा मे बिताया करते थे। पर पीछे से जब आप के अनुयायी बढ़ गये, तब उनके द्वारा कभी कभी प्रत्यक्ष सहायता देते; जैसे; समाचार वगैरः गुप्त रीतिसे पहुँचा देते! पर यह सहायता भी अत्यन्त परिमित थी।

(६) सारांश, देश की परिस्थिति से शिवाजी के समान पुरुष उत्पन्न हुआ। उनमें सब स्वाभाविक गुण थे ही। उन पर माता के शिक्षण का सेचन हुआ। दादोजी कोडदेव ने उनकी उच्छृङ्खलता नियमित की, कथा-कीर्तनों से मन में धर्म की जागृति हुई, उच्च विचार उत्पन्न हुए, मालूम होने लगा कि धर्म, स्वदेश, स्वराज्य के उद्धार के लिए परमेश्वर ने मुझे भेजा है, इसमें स्वार्थकी बाधा किसी प्रकार न होनी चाहिए। यह स्मरण रखने के योग्य है कि ऐसे विचारों से ही प्रेरित होकर शिवाजी ने इस महान् कार्य को हाथ में लिया। रामदास स्वामी लोगों के मनों को तैयार कर चुके थे और कर रहे थे। शिवाजी को सदा दैवीशक्ति की प्रेरणा रही और वे इसी स्फूर्ति से कार्य करते रहे। वे अपने लोगों के, देश के, कालके प्रतिनिधि थे और इसी नातेसे सबकार्य निबाहते रहे!

चौथा परिच्छेद

लोक-नायक के रूप में शिवाजी

पिछले वर्णन से पाठकों को यह धारणा हो जाने का डर है कि हमने परिस्थिति को ही सब महत्व दे डाला है और शिवाजी के लिए कुछ बाक़ी न रक्खा, यद्यपि हम शिवाजी की योग्यता दिखलाने का सङ्कल्प कर रहे हैं। हम अपने पाठकों को इस विषय में सावधान करते आये हैं, तथापि हम जानते हैं, हमारा डर झूठा नहीं है। इसलिए आगे अब यह शङ्का दूर करने का प्रयत्न किया जाता है।

(१) इतिहास के निर्माण में व्यक्ति और प्रकृति का महत्व कितना है यह निश्चय करना बड़ी कठिन बात है। एक पक्ष व्यक्ति को सारा महत्व देता है और यहाँ तक कहने का साहस करता है कि दुनिया का इतिहास महापुरुषों के चरित्र के सिवा और कुछ नहीं हैं *। दूसरा पक्ष कहता है कि मनुष्य जाति के दैवसूत्र कुछ ऐसे नियमों से नियमित हैं जो कभी नहीं बदले जा सकते, और जो हम स्पष्टतया जान सकते हैं। इस पक्ष का कहना है कि मनुष्यजाति के कार्यों की दिशा निश्चित करने में व्यक्ति का कोई महत्व नहीं है। महापुरुष भी जिस परिस्थिति में रहते हैं, उस

---

* The History of the world is the biography of the great men—Carlyle.

परिस्थिति के वे केवल बच्चे मात्र हैं। हमारे दैवसूत्रों को बदलने की उनमें कोई शक्ति नहीं रहती‡। शिवाजी के पूर्व चरित्रकार नितान्त पहले पक्ष के हैं। इसके दो तीन कारण हैं। एक तो इतिहास लेखन की शैली बदलती आ रही है। कहीं का भी प्राचीन इतिहास-ग्रन्थ उठाइए, आप उसमें व्यक्ति का महत्व पायेंगे—परिस्थिति का विचार बहुत कम या नहीं भी मिलेगा। दूसरा कारण यह है कि समकालीन व्यक्ति के कार्यों से उस काल के लेखकों का मन इतना दीप्त हो जाता है कि वे उस व्यक्ति का सच्चा महत्व नहीं जान सकते। वे ज़रूर बढ़ाकर लिखेंगे। तीसरी बात यह है कि अपने अपने प्रिय पुरुषों का चरित्र, उसके भक्त अथवा अनुयायी पक्षपात से ही लिखते हैं। उनकी दृष्टि निष्पक्ष नहीं हो सकती। इन तीन कारणों से प्राचीन ग्रन्थकारों ने सब श्रेय अथवा दोष (स्तुति-पाठक किंवा निन्दक जिस प्रकार जो हो) शिवाजी को ही दे डाला है। धीरे धीरे यह स्थिति बदलती गई है और परिस्थिति को भी महत्व मिलता गया है*। और अब परिस्थिति का विचार शिवाजी के व्यक्तित्व के विचार करने के पहले किया जाता है! परन्तु, जैसा हम ऊपर कह आये हैं, यह निश्चय करना बड़ा कठिन कार्य है कि किसे कितना महत्व दिया जाय। व्यक्ति का महत्व स्पष्ट है और साधारण जनता को तुरन्त जँच जाता है। शिवाजी ने महाराष्ट्र के स्वातन्त्र्य और धर्म का उद्धार किया, यह

---

‡ Buckle (History of the Civilization of England.)

* यह खयाल रखने की बात है कि Grant Duff साहब ने भी परिस्थिति का थोड़ा बहुत विचार अवश्य किया है।

स्पष्ट है और उसे हर आदमी स्वीकार करेगा, परन्तु इस कारण परिस्थिति का महत्व हम नहीं भूल सकते। ओलिव्हर क्रामवेल सब प्रकार से योग्य था, उसके विचार ऊँचे थे, और उसने उसी प्रकार प्रयत्न भी किया,- पर उसे सफलता प्राप्त न हुई। जो बात इंगलेंड में १६४७ में सफल न हुई, वही बात १६८८ में बिना रक्तपात के फलीभूत हुई। इसका क्या अर्थ है ? क्या इसका यह अर्थ नहीं कि क्रामवेल के कार्य के लायक परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी ? १६४७ में अँग्रेज़ लोगों में उस धार्मिक और राजकीय स्वतन्त्रता की कल्पना भी न थी, जो क्रामवेल उन्हें देना चाहता था, और इस कारण उसका प्रयत्न सफल न हुआ ! परिस्थिति परिपक्व हो जाने पर वही कार्य १६८८ में बिना रक्तपात के हो गया। एक और उदाहरण लीजिए। जान विकलिफ वही कार्य करना चाहता था जो मार्टिन लूथर ने १५१७ ई० में किया। जान विकलिफ को तब भी सफलता न प्राप्त हुई। पर मार्टिन लूथर ने योरप का ही क्या, वरन् सारी दुनिया का इतिहास बदल दिया। क्या इसमें परिस्थिति का महत्व नहीं दिखाई पड़ता ? पर ख़याल रखिए कि लूथर का महत्व, इससे कम नहीं हो जाता। नहीं, इसी से व्यक्ति का सच्चा महत्व और उसकी सच्ची योग्यता दिखाई पड़ती है। परिस्थिति का विचार दो कारणों से करना ही पड़ता है। एक तो जब हम बड़े बड़े राष्ट्रीय आन्दोलनों के कारण ढूँढ़ते हैं तब व्यक्ति-विषयक महत्व कम होता जाता है और परिस्थिति-विषयक महत्व बढ़ता जाता है। दूसरी बात यह है कि इससे हमे ज्ञात होता है कि व्यक्ति-विषयक महत्व के सिवा और कई तत्व भी ऐसे हैं जिनका विचार करना हमें आवश्यक

है, ताकि हम सब घटनाओं का कार्य-कारण-सम्बन्ध सरलता से समझ सकें। पर जितने प्राचीन इतिहासों पर (विशेषतः यह बात हिन्दुस्थान के विषय में अधिक घटती है) हम विचार करेंगे उतना ही व्यक्ति-विषयक महत्व बढ़ता दिखाई देगा, क्योंकि उस काल में व्यक्ति की आकांक्षा-महत्वाकांक्षा पर राजकीय बातें अवलम्बित रहा करती थीं। इस कारण हमें शिवाजी की योग्यता का दिग्दर्शन दोनों दृष्टि से करना आवश्यक है। जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, यह काम बड़ा कठिन है। क्योंकि दोनों की मात्रा का क्या सम्बन्ध है, यह निश्चित करना अन्ततः कठिन ही है। दो पहाड़ियों के बीच की घाटी में चलना है, और मार्ग टेढ़ा है। तथापि आगामी प्रकरणों में उस मार्ग के तय करने का प्रयत्न यथाशक्ति किया जायगा।

(२) शिवाजी का सब से बड़ा भारी महत्व यह है कि परिस्थिति का उन्होंने पूर्ण और उचित उपयोग किया। उस काल के लोगों की जो इच्छा थी वही उनकी इच्छा थी। उस काल के लोगों का जो ध्येय था वही उनका ध्येय था। उस काल के लोगों की जो महत्वाकांक्षा थी वही उनकी महत्वाकांक्षा थी। उस काल के लोगो का जो सुख-दुःख था वही उनका सुख दुःख था। उस काल के लोगों की जो स्फूर्ति थी वही उनकी स्फूर्ति थी। सारांश, वे अपने काल की परिस्थिति के मूर्तिमान् स्वरूप थे। इतना होने पर भी वे अपने काल को पहचान सकते थे। उन्हें मालूम था कि इस कार्य में ये लोग साथ देंगे, और उनका उपयोग करना हमारा कर्त्तव्य है। उन्हें आन्तरिक स्फूर्ति हो गई थी कि परमेश्वर ने हमें दुनिया में इसी कार्य के लिए भेजा है।

विश्वास हो गया था कि ईश्वर इसमें हमें सफलता देगा। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि उस परिस्थिति में रहने वालों में से शिवाजी ही को इतनी भारी स्फूर्ति क्यों हुई ? मार्टिन लूथर के समय पोप के घृणित कृत्यों को देखने और समझने वाले क्या अन्य कोई न थे, पर विटेनवर्ग के चर्च पर पोप के विरुद्ध लेख लिखकर चिपकाने की स्फूर्ति और हिम्मत इसी महापुरुष को क्यों हुई ? इस प्रश्न के उत्तर में आप यदि कुछ कह सकते हैं तो यही कहेंगे कि परिस्थिति का तो महत्व हुई है, पर उसके उपयोग करने का महत्व व्यक्ति को है। यही उत्तर शिवाजी के लिए भी उपयुक्त है। इस प्रश्न का एक पहलू और है—स्फूर्ति और कार्य आरम्भ करने की हिम्मत तो आवश्यक हुई है, पर उस कार्य की सफलता के लिए अनेक उच्च गुणों की भी आवश्यकता होती है, जिनके अभाव से वह श्रेष्ठ कार्य विफल हो जाता है। प्रथम इन गुणों का विचार हम इस परिच्छेद में करेंगे। इसके सिवा यह याद रखने के लायक है कि शिवाजी एक ऐसे अद्वितीय व्यक्ति थे कि उनके साथ किसी ने विश्वास-घात नहीं किया। उनकी नौकरी में सब जाति और सब क़ौम के लोग (मुसलमानों को मिला कर) शामिल थे। यह महत्व बहुत थोड़े महापुरुषों को प्राप्त हुआ है। क्रामवेल, लूथर इत्यादि महापुरुषों को सदा विश्वास-घात का डर बना रहता था, पर इस पुरुष को न ऐसा डर था और न उनके आदमियों में से किसी ने ऐसा प्रयत्न ही किया था। इस बात से यह विचार उत्पन्न होता है कि ऐसे कौन अद्वितीय गुण इस पुरुष में थे जिनके कारण लोग उनके सदा विश्वास-पात्र बने रहे ?

(३) सफलता प्राप्त करने के लिए लोकनायक में प्रथम गुण जो चाहिए वह है उत्तम शील। शील-रहित लोग भले ही धोखेबाज़ी से चार दिन धूम धाम कर लें, पर जीवन में उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। किसी भी क्षेत्र में जाइए, सुन्दर शील ही सफलता की नींव दिखाई पड़ेगी। जब तक अनुयायी यह न जान लें कि जिसका हुक्म हम मानते हैं, वह सब दुर्गुणों से रहित है तब तक वे निर्भय हो विश्वास पूर्वक उसका हुक्म न मानेंगे। यदि उन्हें थोड़ी भी शंका हो कि उनका नायक किसी प्रकार उन्हें धोखा देता है तो वे भी इसी प्रकार उससे बर्ताव करने लगेंगे। किसी भी लोकनायक को ले लीजिए, उसमें नाना गुणों का सङ्ग अवश्य मिलेगा। हैदरअली में कुछ दुर्गुण अवश्य थे, पर उसके गुण ही श्रेष्ठ थे और इसी कारण थोड़े दिनों के लिए ही सही परन्तु राजा बन बैठने की सफलता उसे प्राप्त हुई। बाबर को शराब पीने की आदत थी, पर फ़तेहपुर सीकरी में पहले जब उसे हार खानी पड़ी तब उसने तुरन्त शराब छोड़ दी। अकबर में कुछ दुर्गुण अवश्य थे, पर जिस समय कार्य आ पड़ता था, उस समय वे दुर्गुण उसके अधीन हो जाते थे, वह उनके अधीन नहीं रहता था। जो अपना शील खो देता है उसके हाथ से कोई महान् कार्य नहीं हो सकता और उसका कृत्य दीर्घ स्थायी न होगा। शिवाजी के विषय में इतना ही लिखना बस है कि उन्हें किसी प्रकार का व्यसन न था। उनकी फौज में सख़्त नियम था कि स्त्री, बालक और दुर्बल पुरुष को किसी प्रकार न छेड़ा जाय। इस नियम को तोड़ने पर प्राण-दण्ड तक भी हो सकता था। एक बार एक सरदार ने एक

यवन-स्त्री पकड़ ली। सुन्दरी रहने के कारण उसे वह शिवाजी के पास ले आया। उसे छत्रपति ने इतने ज़ोर से धिक्कार दिया कि उसने फिर ऐसा काम क़भी नहीं किया। शिवाजी अत्यन्त धर्मशील थे, यह हम पहले कहही आये हैं। उन्होने कई बार रामदास स्वामी को अपना राज्य प्रदान कर दिया था। इसी से ज्ञात होता है कि वे निःस्वार्थ होकर स्वराज्य का उद्धार करने को तत्पर हुए थे। उन्हें अपने निज के महत्व का कोई खयाल न था, यह उनके अनेक कृत्यों और भाषणों से स्पष्ट है। निर्व्यसन, निःस्वार्थ, महात्वाकांक्षाहीन, दयालु, सत्यनिष्ट, धार्मिक और पाप-भीरु होने से पुरुष लोकनायक हो सकता है और ये सब गुण शिवाजी में मौजूद थे। उनके अनेक शत्रु थे, पर किसी ने यह नहीं लिखा है कि उनमें इस प्रकार का कुछ भी दोष था। उनका सख्त् हुक्म था कि लूट करते समय किसी को किसी प्रकार की शारीरिक व्यथा न पहुँचाई जाय। ग़रीबों के, दुर्बलों के, बालकों के, स्त्रियों के तो वे भ्राता और संरक्षक ही थे। इस कारण ये लोग उन्हें देवता के समान मानते थे। दूसरी बात यह याद रखने लायक़ है कि जिसे राष्ट्रीय कर्त्तव्य का पालन करना है और राष्ट्र को उस कर्त्तव्य की पूर्ति में लगा देना है वह किसी प्रकार के दोष से युक्त रहने से उसका कार्य उतना ही लँगड़ा हो जाता है। वह जोश, वह प्रेम, जो सच्चे मन से स्वार्थ-त्याग-पूर्वक कार्य करने से उत्पन्न होता है उसका आनंद अपूर्व है और उस कार्य को जो शक्ति प्राप्त होती है वह बहुत काल तक टिकती है। ऐसे गुण शिवाजी में न होते तो शिवाजी का स्मरणमात्र उतना बलदायक न हो जाता! शिवाजी बड़े उदार-हृदय थे। इस कारण

उनके अनुयायी उनसे सदा सन्तुष्ट रहते थे। योग्य काम पर इनाम देना तो वे अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते ही थे; पर उस पुरुष की अन्य प्रकार से भी अच्छी प्रतिष्ठा करते थे। उनका व्यक्तिगत जीवन सादा था। इस कारण वे मितव्ययी थे। यह मामूली बात है कि श्रेष्ठ पुरुष अपने शरीर मात्र के लिए आवश्यक से ज्यादा कभी नहीं खर्च करते। जो राष्ट्रीय कार्यों के अगुआ होते हैं, उनकी रहन-सहन सादी ही होती है और इस कारण वे लोगों को प्रिय बने रहते हैं। शिवाजी का धार्मिक स्वभाव इतना प्रज्वलित था कि उन्हें अपने शरीर का कभी ख्याल न रहता था, फिर राज्य धन वगैरः का लोभ कहाँ? उन्होंने श्री समर्थ रामदास के सम्मुख इस झगड़े से दूर होने की कई बार इच्छा प्रकट की और प्रत्येक बार स्वामी ने उन्हें सच्चे कर्तव्य की शिक्षा दी। ऐसा धर्मप्राण, उच्च और उदात्त विचारों में प्रेरित, प्रज्वलित स्वदेशाभिमान से पूर्ण और धर्म-सहिष्णु पुरुष जिस कार्य में हाथ डालता उस कार्य में सफलता होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

(४) इन्हीं गुणों के अनुशङ्गी अनेक गुण उनमें थे। वे सङ्कट से डरनेवाले न थे। इतना ही नहीं, सङ्कट के समय वे स्वयं आगे होते थे। इन गुणों के बिना लोकनायक यशस्वी नहीं हो सकता। जब किसी के अनुयायी देखते हैं कि वह अपना जीवन अधिक मूल्यवान समझता है और सङ्कट में दूसरों को डालता है तब वे हीं हिम्मत के साथ काम नहीं करते। अगुआ के आगे होने से अनुयायी पीछे पीछे दौड़ते चले जाते हैं। जितने श्रेष्ठ सेनापति हुए है, वे सब से प्रथम सङ्कट से भेंट करने गए हैं। इससे जोश

पैदा होता है और उसी से कार्य होता है। अकबर सेना के आगे रहता था। हुमायूँ कई बार क़िलों की दीवारों पर सब से प्रथम चढ़ा है। औरङ्गज़ेब ने सामूगढ़ पर अपने हाथी के पाँव बँधवा दिये और इसी कारण उसे विजय प्राप्त हुई। आरम्भ से ही शिवाजी सब कार्यों में आगे रहते थे और बाद में भी उन्होंने अपना यह क्रम न छोड़ा। अफजल ख़ाँ से त्रस्त रहने पर भी शिवाजी ही स्वयं उससे मिलने गये। शाइस्ता ख़ाँ के महल में स्वयं शिवा जी ही घुसे थे। दिल्ली से अकेले वे अपने राज्य में चले आये, इससे उनका अतुल साहस प्रकट होता है। बाबर की सफलता का एक विशेष कारण यह था कि वह अपने को अपने अनुयायियों के समान ही समझता था और उनके समान सब सङ्कट सहने को तैयार रहता था, यह गुण शिवाजी में कुछ अंश में ज्यादा ही था। अनुयायियों के आगे चलना ही नहीं, वरन् कई वार उनकी सहायता के बिना, उनकी जान जोखिम में न डालने की इच्छा से, वे कई कार्य अकेले ही कर डालते थे। कहते हैं कि निडर होकर मुग़लो की छावनी में भेस बदल कर वे कई वार गये थे। पर इससे यह न समझना चाहिए कि वे केवल साहसप्रिय थे। चातुर्य का उपयोग करने पर ही वे साहस का उपयोग करते थे। पर विशेषता यही थी कि समय पड़ने पर पीछे हटना तो वे जानते ही न थे।

(५) इन गुणों के साथ एक अत्यन्त आवश्यक गुण या साधन वुद्धि है। इस गुण का महत्व बड़ा भारी है, और सब कार्य करने मे इसकी आवश्यकता होती है। कई बार तो इसी के जोर पर सफलता प्राप्त होती है। जितने बड़े बड़े सेनापति और धुरं-

धर राजनीतिज्ञ पुरुष हुए हैं वे सब इसी महान् शस्त्र के बल से अपने कार्य में सफल हुए हैं। बाबर, अकबर, औरङ्गज़ेब और शेरशाह ये सब अत्यन्त बुद्धिमान् और चतुर थे। हमारी समझ में शिवाजी की बुद्धिमत्ता इन सब की बुद्धिमत्ता से श्रेष्ठ है, क्योंकि प्रत्येक कार्य में उनका अधिकार दिखाई पड़ता है। आक्रमण करना, चालाकी से भाग जाना, न जानते ही आ खड़े होना, चालाकी से हटा देना, ये सब कार्य चातुरी और बुद्धिमत्ता के हैं। ख़याल रखने की बात है कि शिवाजी का कोई कार्य विफल न हुआ। शिवाजी की क़िले की रचना, राजकीय व्यवस्था, सेना का सङ्गठन, मुल्की व्यवस्था, सब मनन करने के योग्य विषय हैं। इन्हीं मे उनकी श्रेष्ठता अधिक दिखाई देती है। हम आगे दिखलावेगे कि इनमें से कई बातें, सब परिस्थिति बदल जाने पर भी, आजकल के शासन में पाई जाती हैं। अफ़ज़ल ख़ाँ से भेंट करने के प्रसङ्ग पर उन्होंने अतुल साहस और बुद्धिमत्ता दिखलाई। उनकी दूरदर्शिता और चातुर्य की जितनी तारीफ़ की जाय, थोड़ी है। इसी प्रकार शाइस्ता ख़ाँ की चढ़ाई के समय केवल बीस साथियों को लेकर शिवाजी बारात बना कर पूने में घुसे। वहाँ से साहस के साथ शाइस्ता ख़ाँ के महल में चले गये। इधर दूसरी ओर यह चालाकी की गई थी कि पाँच सौ बैल सींगों में मशालें बाँध कर खड़े कर दिये गए थे और हुक्म दे दिया गया था कि इशारा पाते ही मशालें जला कर बैलो को हाँक देना और लड़ाई के बाजे बजाने लग जाना। स्वयं, शिवाजी ने शाइस्ता ख़ाँ को इतना डरा दिया कि फिर पूने में ठहरने की उसे हिम्मत न हुई। उधर दूसरी ओर जो थोड़ी सेना

रख दी थी, उसने शाइस्ता खाँ की फौज को तीनतेरह कर डाला। शहाजी को जब आदिलशाह ने क़ैद किया तो बड़ी चालाकी से, बिना कुछ किये, उन्होंने पिता को छुड़ा लिया। दिल्ली जाने के पहले क़िले का बन्दोबस्त करना, सब राज्य की व्यवस्था कर जाना, वहाँ से चालाकी से छूट जाना, चतुरता से सम्भाजी की रक्षा करना और मुग़ल राज्य में से सुरक्षित चले आना, यह सब उनकी चतुरता और बुद्धिमत्ता का प्रदर्शक है। कई लोग समझते हैं, दिल्ली जाने में उन्होंने ग़लती की। पर जैसा हमने पहले दिखा दिया है, उसमें उनकी चतुरता और बुद्धिमत्ता ही दिखाई देती है। यहाँ तक कि राज्याभिषेक में भी उनकी दूरदर्शिता दिखाई देती है। राज्याभिषेक न होने से उनके कृत्य को ग़दर-बलवे का ही स्वरूप रहता, पर राज्याभिषेक होने पर सब के मुँह बन्द हो गये। शिवाजी के बनाये हुए क़िले आजतक विद्यमान् हैं और उनकी चतुरता के प्रदर्शक हैं।

(६) लोकनायक में एक बात और आवश्यक है कि उस को अपने कार्य की सफलता का पूर्ण विश्वास होना चाहिए। अगर नायक को ही अपने कार्य से सफलता की आशा न हो तो अनुयायियों को कहाँ से हो सकती है? जितने बड़े बड़े कार्य सफल हुए हैं उन सब के नायकों को सफलता के विषय में पूर्ण आशा थी। क्रामवेल ने जो लड़ाई जीती है उसके बारे में उसे पहले से ही पूर्ण विश्वास होता था कि मैं जीतूँगा। नेलसन हमेशा आनन्दी और आशावादी रहता था। हालैण्ड के स्वातंत्र्य के लिए लड़ने वाले विलियम (दी सायलेन्ट) ने कभी निराशा के उद्गार नहीं निकाले। उसके पश्चात् विलियम ने (जो कि

१६८८ में इंगलेण्ड का राजा हुआ) जो अपने कार्य के विषय में आशा दिखलाई वह अतुलनीय है। सारा हालैण्ड लुई (चौदहवाँ) ले चुका था, उसकी सेना चारों ओर फैल गई थी, डच लोगो को अपना कहने के लिए कोई अवसर नहीं रहा था। ऐसे समय में भी लुई की पराधीनता स्वीकार करने को वह तैयार न था। हालैण्ड का स्वातन्त्र्य नष्ट हो चुका। इस प्रकार जब उसे इस महान् आक्रमणकर्ता का सन्देश मिला तब उसने उत्तर भेजा कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। पहले हालैंड के बचे खुचे खड्ढे में लोग अपनी जान दे देंगे, फिर हमारा स्वातन्त्र्य कैसे नष्ट होगा ? और हुआ भी ऐसा ही। हालैंड का स्वातन्त्र्य प्रचण्ड लुई नष्ट न कर सका। इसी प्रकार जितने स्वदेश स्वातन्त्र्य के उद्धारक हुए है, वे प्रचण्ड आशावादी हुए हैं,—उनके रोम रोममें अपने कार्य की सफलता की आशा पाई जाती है। शिवाजी ने जब कार्य शुरू नहीं किया था, तभी से उन्हें उसके विषय में पूर्ण विश्वास था कि सफलता होगी। "बुजुर्ग" लोग उन्हे भी कहा करते थे कि "तरुण है, इसी कारण इसे ऐसा मालूम होता है। चार दिन के बाद सीधा हो जायगा।" पर उन्हें निराशा छू तक न गई थी। उन्होंने कोई ऐसा कार्य शुरू नहीं किया, जिसके बारे में उन्हें पूर्ण विश्वास न रहा हो। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि महाराष्ट्र का स्वातन्त्र्य फिर से उसे मिल जायगा और उन्होने स्वातन्त्र्य प्राप्त करके ही छोड़ा।

(७) मानसिक और नैतिक गुणों के सिवा उनमें शारीरिक गुण भी थे। कहते हैं कि शिवाजी का भाषण इतना मनोमोहक होता था कि जिससे वे बोलते, वही उनकी बात मान लेता था।

अफ़ज़ल खाँ से सन्धि का प्रश्न उठा तब उसने शिवाजी के पास अपना ब्राह्मण वकील भेजा था। उसे उन्होंने अपने भाषण से ऐसा मोहित कर लिया कि वह उनका सब कहना मान गया। उस वकील के सामने जब स्वदेशोद्धार का प्रश्न उन्होंने उपस्थित किया तब वह इतना मोहित हो गया कि बोल उठा—आपके कार्य से मैं पूर्ण सहमत हूँ और मेरी पूर्ण सहानुभूति है, पर खाँ का नमक मैंने खाया है, इसलिए मैं उसके विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता; तथापि मैं आपके भी विरुद्ध कोई कार्य न करूँगा। वृद्धावस्था के कारण वकील में वह जोश नहीं था जो तरुणों में हो सकता है, नहीं तो वह भी उनका साथी हो जाता! जयसिंह से जब सुलह की बातचीत चली तब इस अतिवृद्ध योद्धा को भी उन्होंने अपने भाषणचातुर्य से मोहित कर लिया और उसने भी उनके कार्य से अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट की। पर जयसिंह मुसलमानों की नौकरी करते करते वृद्ध हो चुका था। अपने मान से वह कई बार हाथ धो चुका था और विजयी पक्ष में वह तुरन्त मिल जाता था। इन अनेक कारणों से उसमें कोई जोश नहीं रह गया था। वृद्धों की सदा यही अवस्था होती है। वे निराशावादी, जोश-रहित, "जैसी चलै बयार पीठ पुनि तैसी दीजै" के अनुसार दास-वृत्तिक ही रहा करते हैं। पर तरुण उनके विरुद्ध होते हैं। इस कारण उनके कार्य सत्वहीन जीवों को नहीं सुहाते। इसका एक और कारण है कि उन्हें अपने मृतवत् कार्यों की बड़ी भारी चिन्ता हो जाती है। जो हो, शिवाजी के भाषण से अनेक प्रसङ्गों पर बड़ा भारी कार्य सिद्ध हुआ है। निदान एक सैनिक के लिए तो यह गुण बड़ा ही मूल्यवान् है।

बाबर अपने मनोमोहक भाषण से अपनी सेना का उत्साह बढ़ाता रहा। फतेहपुर सीकरी की लड़ाई में, इसी कारण, उसे विजय प्राप्त हुई, नहीं तो शायद हिन्दुस्थान का इतिहास ही बदल जाता। लड़ाई होने के पहले उसने जो सुन्दर भाषण किया, उससे उसके सिपाहियों में ऐसा उत्साह भर गया कि वे बड़े जोश से लड़े और उन्होंने विजय प्राप्त की।

इस सारे कार्य को करने के लिए जिस शरीरयष्टि की आवश्यकता होती है, वह भी शिवाजी के अनुकूल ही थी। वे सरदारों के कुल में पैदा हुए थे, जिनका पेशा युद्ध के सिवा और कुछ न था। वे बचपन से जङ्गल-झाड़ियों और पहाड़ों में घूमते फिरते थे। उन्होंने जीवन भर अविश्रान्त वही कार्य किया। यह ध्यान देने के लायक है कि मामूली सिपाही की तरह, वरन् उससे भी ज्यादह ये सब कार्य स्वयं करते रहे। उन्हें रात-दिन चौबीस घण्टे जीवन भर शत्रु की चिन्ता लगी ही रही। विश्राम किसे कहते हैं, यह शिवाजी को मालूम न था। ऐसी अवस्था में वे सदा ऐसे प्रचण्ड कार्य करते रहे। इसी से उनकी शारीरिक अवस्था का पता चल सकता है। राज्याभिषेक के समय शिवाजी का वजन ७० सेर था।

(७) इस प्रकार शिवाजी निर्दोष, निर्व्यसन, सर्व आवश्यक गुणों से पूर्ण स्वदेश-त्राता के रूप में जनमे थे। इस पुरुष को अच्छी तरह से पहचान लेना। अनेक पुरुषों को पहचान लेना है। दुराग्रह, पक्षपात, अज्ञान, शत्रुता आदि अनेक कारणों से कुछ लोग इस महापुरुष को अनेक वीभत्स नामों से पुकारते थे। पर आनन्द की बात है कि यह नासमझी धीरे धीरे

दूर हो चली है। नैतिक, मानसिक, शारीरिक आदि सब गुणों से संयुक्त यह महापुरुष महाराष्ट्र में उत्पन्न हुआ। इसी कारण आज महाराष्ट्र का कुछ मूल्य है। महापुरुष की सङ्गति सदा वाञ्छनीय और लाभकारी ही होती है। पर यह सङ्गति नहीं तो स्मृति भी कुछ कम लाभकारी नहीं होती। उसका स्मरण ही घना उत्साह, जोश और आदर उत्पन्न करने वाला होता है। उसके कार्य का मनन करना, स्वयं अपने को उसी के काल के दर्पण में देखना है। जिस महापुरुष ने अविश्रान्त श्रम करके प्रज्वलित स्वदेशाभिमान से उत्तेजित हो, महाराष्ट्र का उद्धार किया और एक नया राष्ट्र निर्माण कर दिया, जिसकी स्मृति आज भी नई ही जान पड़ती है, वह पुरुष करोड़ों धन्यवाद का पात्र है।

पाँचवाँ परिच्छेद

शिवाजी की राज्य-व्यवस्था

शिवाजी की योग्यता समझने के लिए उनकी राज्य व्यवस्था का भी अध्ययन करना आवश्यक है। उनकी राज्यव्यस्था के मोटी तरह से चार भेद किये जा सकते हैं-(१) अष्ट-प्रधान-मण्डल (२) मुल्की-व्यवस्था (३) क़िले और (४) सेना। अब प्रत्येक के विषय में यहाँ अलग अलग विचार करना है।

(१) अष्ट-प्रधान मण्डल

राष्ट्र के इतिहास में शिवाजी के समान पुरुष का महत्व बहुत अधिक है। टीपू सुल्तान, वेलिंग्टन आदि रण-भूमि पर पराक्रम

करने वाले पुरुष कितने ही मिलेंगे। उसी प्रकार पिट, वेल्सली के समान राज्य-कार्य-कुशल पुरुष भी अनेक मिलेंगे। पर इन दोनों बातों में प्रवीणता प्राप्त करनेवाला शिवाजी के समान अल्प-शिक्षित पुरुष अप्राप्य है और इसी से शिवाजी की अद्वितीय योग्यता प्रदर्शित होती है। किसी को परम्परा प्राप्त आधार और अनुभव और किसी को अनुकरणीय उदाहरण मिल जाता है; पर शिवाजी को यह कुछ भी प्राप्त न था। ऐसी स्थिति में भी शिवाजी ने राज्य की चिरकालीन दृढ़ता के लिए अनेक संस्थायें निर्माण कीं। देश-काल के मान से यथायोग्य, दृढ़ता के मान से पूर्ण दृढ़ और उपयुक्तता के मान से वे संस्थायें सर्वव्यापी थीं और इसी कारण, सैकड़ों वर्ष बीतने पर भी, बिल्कुल विपरीत परिस्थिति में से पार पाते पाते उनके कुछ मूल चिन्ह आज भी विद्यमान् हैं। अष्ट-प्रधान-मण्डल उन्हीं में से मुख्य संस्था थी। इन संस्थाओं के तत्व दूरदृष्टि-पूर्ण थे और इस कारण स्वसंरक्षण और राज्यवर्धन ये दोनों काम महाराष्ट्रीय कर सके। औरङ्गज़ेब की प्रचण्ड शक्ति का सामना कर विजय प्राप्त करने में इन संस्थाओं का बहुत उपयोग हुआ। इसी कारण महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता कुछ काल तक क़ायम रह सकी और संस्थाओं की गति अवरुद्ध होने के कारण ही इस सत्ता का नाश हुआ।

शिवाजी के अष्ट-प्रधानों के नाम ये हैं:—

फारसी नाम,	संस्कृत नाम,	कर्त्तव्य।
१—पेशवा।	पन्त प्रधान।	मुख्य दीवानगीरी।
२—मुजुमदार।	पन्त अमात्य।	मुल्की वसूल और हिसाब।
३—सुरनीस।	पन्तसचिव।	राज्य के सब दफ्तरों की देखभाल।

४—वाकनीस।	मन्त्री।	राजा के खानगी कार्य की देख-भाल।
५—डबीर।	सुमन्त।	परराज्य से व्यवहार रखना।
६—सर नौबत।	सेनापति।	समस्त फ़ौज की व्यवस्था रखना।
७—०	न्यायाधीश।	सब झगड़ों का फ़ैसला करना।
८—०	पण्डित राव।	धर्म विभाग का सञ्चालन।

पेशवा की तनख्वाह कोई साढ़े चार हज़ार रुपये महीना, अमात्य की साढ़े तीन हज़ार और बाक़ी अधिकारियों की कोई तीन हज़ार रुपये महीना थी। आजकल के अंगरेज़ी राज्य के वेतन से अगर इसकी तुलना की जाय तो ये वेतन अनुचित नहीं जान पड़ते। ख़याल रखने की बात है कि उस समय रुपये की क़ीमत आजकल से बहुत ज़्यादह थी।

इन सब में पेशवा मुख्य था, और वह दूसरों पर देख–रेख रखता था। राजा के बाद पेशवा का ही दरजा ऊँचा था, और वह सिंहासन के पास दाहिनी ओर प्रथम स्थान पर बैठता था। मुल्की और सैनिक व्यवस्था पर उसकी देख-भाल रहती थी और राज्य की प्रत्येक घटना के लिए वह ज़िम्मेदार था। सेनापति के हाथ में सारी सेना का सञ्चालन था और वह राजा की बाईं ओर प्रथम बैठक पर बैठता था। अमात्य, सचिव और मन्त्री ये तीनो अनुक्रम से पेशवा के नीचे बैठते थे। भिन्न भिन्न कार्यों के लिए भिन्न भिन्न विभाग थे और प्रत्येक विभाग के लिए एक एक अधिकारी ज़िम्मेवार रहता था और इस कारण उस कार्य में उसे प्रवीणता प्राप्त हो जाती थी। पर यह याद रखना चाहिए कि सिर्फ़ दो मन्त्रियों या अधिकारियों को छोड़ कर दूसरों को

लड़ाई पर जाने के लिए भी तैयार रहना पड़ता था। यह केवल समय का परिणाम था।

शिवाजी के इस प्रधानमण्डल की तुलना हिन्दुस्थान के राज्य प्रबन्ध से की जा सकती है। स्थिति-वैचित्र्य अथवा कालान्तर के कारण कुछ फर्क़ ज़रूर देख पड़ेगा; पर बात एक ही है। पेशवा का स्थान गवर्नर-जनरल ने लिया है; उसके नीचे सेनापति, उसके नीचे मुल्की प्रधान यानी अमात्य, उसके नीचे परराज्य से व्यवहार रखनेवाला मन्त्री, (वाक्नीस) यानी सुमन्त। हिन्दुस्थान की कौन्सिल में मन्त्री, पण्डितराव और न्यायाधीश इन तीनों को स्थान नहीं है। अंगरेज़ सरकार धर्मविभाग को अपने हाथ में ले नही सकती। मन्त्री प्राइवेट सेक्रेटरी के समान था। तथापि शिवाजी का खानगी सेक्रेटरी अलग था, पर उसे आजकल के प्राइवेट सेक्रेटरी की तरह, प्रधान-मण्डल में स्थान नहीं था। मन्त्री उससे श्रेष्ठ था और उसे इस मण्डल में स्थान प्राप्त था। न्यायाधीश के बदले आजकल लीगल मेम्बर रहता है। परिस्थिति भिन्न रहने के कारण आजकल इम्पीरियल एक्ज़िक्यूटिव कौन्सिल मे एक दो सचिव और हैं। अष्ट-प्रधान का अर्थ सिर्फ आठ प्रधान नही—कभी ज्यादह और कभी कम भी रहते थे।*

* इस मण्डल की तुलना इङ्गलेंड के कैबिनेट से भी अच्छी तरह की जा सकती है। बडा भारी भेद जो हो सकता है सो केवल फौजी अधिकार का है। इङ्गलैंड के कैबिनेट में केवल एक ही मन्त्री रहता है, जो युद्ध और सेना का सारा कार्य चलाता हैं, और यह प्रधान मन्त्री से भिन्न रहता है। मुख्य मन्त्री स्वयं कोई फौजी अधिकार नहीं रखता। कैबिनेट की प्रचलित नीति के कारण दो मन्त्रियों मे विरोध उत्पन्न होना अधिकतर शक्य नहीं—बहुधा मुख्य मन्त्री की सलाह से सब कार्रवाइयाँ

अष्ट-प्रधान को एक सामान्य शब्द समझना चाहिए। पीछे, राजा के अल्पवयस्क होने के कारण, एक "प्रतिनिधि" प्रधान (सचिव) उत्पन्न हुआ जो राजा के बाल्यकाल में उसका कार्य करता था।

शिवाजी ने इस अष्ट-प्रधान की कल्पना कहाँ से ग्रहण की, यह एक प्रश्न है। अगर मुसलमानी राजनीति देखें तो यह स्पष्ट देख पड़ेगा कि मुसलमान राजा पूरी तरह खुदमुख्तार रहते थे। उन्हें अपने अधिकार किसी को देना न सुहाता था। अष्ट-प्रधान कौन्सिल की रचना का तत्व यह नहीं है कि राजा के एकतन्त्री अधिकार कम न हों और मन्त्रियों को कोई अधिकार न होवे, वे केवल आज्ञा के पालन करने वाले नौकर रहें। यानी मुसलमानी राजनीति ऐसी विकसित नहीं हुई थी कि उससे शिवाजी कोई लाभ उठा पाते। अब रही हिन्दू-राज नीति की बात। पुराने ग्रंथों के परिशीलन से यह पता लगता है कि हिन्दू-राजाओं के समय अष्ट-प्रधान की उपस्थिति थी और उनको स्वतन्त्र अधि-

---

होती है। अष्ट-प्रधान-मण्डल में मुख्य मन्त्री, पेशवा स्वयं फौजी व्यवस्था के लिए जिम्मेदार था। मुख्य सेनापति को कैबिनेट में कोई स्थान नहीं है। वह फौजी मन्त्री के हुक्म के अनुसार कार्य करता है। न्यायाधीश की जगह वहाँ लार्ड चान्सलर रहता है, पर इंगलैंड की समस्त संस्थायें जिससे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष उत्पन्न हुई, उस विटान (Witan) नामक संस्था से इस अष्ट-प्रधान मण्डल की तुलना बहुत अच्छी तरह की जा सकती है। इंगलैंड के आरम्भिक इतिहास में ऐसी संस्थायें भिन्न भिन्न रूप में रहीं, और उनकी आवश्यकता हमेशा उत्पन्न होते रहने के कारण, एक ऐसी संस्था बनी रही। उनका रूपान्तर होते होते उसी की जगह, आज वर्तमान कैबिनेट संस्थित है।

कार भी रहते थे। और बार बार कह चुके हैं कि शिवाजी को रामायण, महाभारत पढ़ने का विशेष शौक़ था। अतएव यह कल्पना की जा सकती है कि इन्हीं ग्रन्थों से उसने लाभ उठाया होगा। समय के हेर-फेर से प्रत्येक कल्पना में कुछ परिवर्तन होता ही है। इसी प्रकार शिवाजी ने भी मूल कल्पना में कुछ रद्दोबदल किया था।

शिवाजी ने ऐसी योजना कर दी थी, जो बेरोक-टोक चलती रहे; पर उसके पालन न करने के कारण बहुत नुक़सान हुआ। प्रधानों को स्वतन्त्र जागीर नहीं दी गई थी, न अधिकार वंश-परम्परा के लिए थे। उन्होंने अपने प्रधान अनेक बार बदले; योग्यता ही अधिकार मिलने का साधन था। इन प्रधानों ने अनेक सङ्कट सहे थे, और अपने कार्य में ये बड़े प्रवीण थे।

शिवाजी की समस्त योजना के दो मुख्य उपयोग थे (१) स्वराष्ट्र-संरक्षण और (२) राज्य-संवर्धन। बहुधा दूसरे राज्यों को एक और काम करना पड़ता है—अन्तःशत्रुओ से बचाव करना। पर शिवाजी के राज्य में यह प्रश्न उठा ही नहीं। और जगहों के इतिहास में ग़दर-बलवा दिखाई देता है, पर शिवाजी के राज्य में जहाँ मुसलमान, हिन्दू सब तरह के लोग रहते थे, यह डर उत्पन्न ही नहीं हुआ। ऐसा कह सकते हैं कि यह राज्य कुछ अंश में लोक-सत्तात्मक था। देश-सेवा करने का अवसर यहाँ प्रत्येक को था; इससे राज्य बहुत दृढ़ होता गया। राज्य के अन्दर फौज रखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। हमेशा फौज पर-राज्य में अथवा सरहद पर रहा करती थी। शिवाजी के राज्य मे बहुत से मुसलमान थे; पर एक भी मुसलमान विद्रोही न

निकला। यह शिवाजी की राज्य-व्यवथा का ही परिणाम हो सकता है। पर-राज्यों को छोड़कर कई मुसलमान शिवाजी के पास नौकर बनकर रहे थे। उस समय आजकल की अथवा मुसलमानी राज्य की प्यूनिटिव पुलिस का कोई काम नहीं था।

ऊपर कह आये हैं कि शिवाजी के समय वेतन नक़द मिलता था और नौकरी वंशपरम्परा नही चलती थी। वेतन के बदले जागीर देने से ये सरदार राजा के हित को छोड़ अपना हित देखने लग जाते हैं और शीघ्र ही बलवान होकर राज्य की जड़ उखाड़ने लग जाते हैं। नौकरी वंश-परम्परा रखने से तो ये बेपरवाह हो जाते हैं और कई दुर्गुण उनमें समा जाते हैं। फिर यह कोई प्रकृति का नियम नही कि पुत्र भी पिता के समान योग्य हो। इतिहास में इसके विपरीत कई उदाहरण मिलते हैं। अथवा यों कहिए कि इतिहास इसी बात का साक्षी है। एक योग्य पुरुष अपनी योग्यता से उत्तम स्थिति को पहुँचता है और उसका पुत्र, उसी स्थिति में पैदा होने के कारण, उसे खो बैठता है। ये दुर्गुण शिवाजी की योजना के कारण राज्य में उनके समय तो न समा सके, पर पीछे से, जब इस योजना के अनुसार कार्य न हुआ तब वे बड़े ज़ोर शोर से उत्पन्न हुए और इसी कारण से जैसे मुसलमानी राज्य की दुर्गति हुई उसी प्रकार महाराष्ट्र की सत्ता का भी नाश हुआ।

[२] मुल्की व्यवस्था

तीसरे परिच्छेद में लिख ही चुके हैं कि मुल्की व्यवस्था के विषय में शिवाजी को दादोजी कोंडदेव से बहुत शिक्षा मिली थी। राज्य का विस्तार ज्यों ज्यों होता गया त्यों त्यों यह व्यवस्था क़ायम

होती गई। पहले ज़मीन का लगान अनाज के रूप में वसूल किया जाता था और ज़मींदार अथवा ठेकेदार उसे सरकार में जमा करता था। शिवाजी ने ये दोनों प्रथायें बन्द कर दीं। ज़मीन की पैमाइश करके उसका लगान क़ायम कर दिया गया और उसे वसूल करने के लिए सरकारी कर्म्मचारी नियत हुए। पहले ज़मींदार अथवा ठेकेदार लगान वसूल किया करते थे। इस कारण इन लोगों से प्रजा को बहुत कष्ट होता था। वाजिब से ज़्यादह वसूल करना और सरकार में कम दाखिल करना यह तो इनका नियम ही था। इस दोष को दूर करने के लिए शिवाजी ने कमावीसदार, महालकरी, सूबेदार, वेतन पानेवाले सरकारी कर्म्मचारी नियत किये। ज़मीन की पैमाइश करके उसकी तादाद काश्तकार के नाम पर चढ़ाना और सरकारी लगान के लिए इकरारनामा लिखवा कर ज़मीन उसके सुपुर्द करना, यह रीति शिवाजी ने चलायी। लगान पैदावार के दो पंचमांश (!) से ज़्यादह न लिया जाता था। लगान किस्तों में वसूल किया जाता था।

इन मुल्की अमलदारों अर्थात् कर्म्मचारियों को फौजदारी अधिकार भी रहते थे। दीवानी का कोई स्वतन्त्र प्रबन्ध न था। गाँव-पञ्चायत की संस्थायें उस समय प्रचलित थीं और इन झगड़ों का फैसला इन्हीं के द्वारा होता था। विशेष प्रसङ्ग पर आसपास के गाँव के मुखिया लोग पञ्च बनाये जाते थे और उनका फैसला अमल में लाने के लिए सरकारी अमलदार मदद किया करते थे। उस समय के कानून हिन्दू-धर्म-शास्त्रों के अनुसार थे और कई बातों में मुसलमानी प्रचलित रीतियाँ भी स्वीकार कर ली जाती थीं।

मुख्य प्रधान-मण्डल में से पन्त-अमात्य और पन्त-सचिव

इन दो अधिकारियों के सिपुर्द ज़मीन-महसूल अर्थात् लगान की सब व्यवस्था थी। पन्त-अमात्य यह देखता कि लगान वसूल हुआ या नहीं; अर पन्त-सचिव सब हिसाब की देख-भाल किया करता था। आजकल के रेविन्यू मेम्बर और फायनन्स मेम्बर के समान दो अधिकारी थे।

शिवाजी के मुल्क के (१) स्वराज्य और (२) मोगलाई, ये दो विभाग थे। जो प्रदेश पूरी तरह अधिकार में था वह 'स्वराज्य' और दूसरों के राज्य में स्थित परन्तु शिवाजी को कर, महसूल वग़ैरः देने वाला प्रदेश 'मोगलाई' कहलाता था। शिवाजी के अधिकार में जो मुल्क था उसका वर्णन सुनिए:—१—वंशोंपार्जित पूना की जागीर। २—मालव प्रान्त—इसमें आजकल मानल, सासवड, जुन्नर और खेड़ ये ताल्लुके समाविष्ट होते हैं। इसमें अठारह पहाड़ी किले थे। ३—वॉई, सातारा और कहाड़पान्त—आजकल के सातारा ज़िले का पश्चिमी भाग। इस में पन्द्रह क़िले थे। ४—पन्हाला प्रान्त—कोल्हापुर का पश्चिम भाग। इसमें तेरह क़िले थे। ५—दक्षिण कोकन—आजकल का रत्नागिरि ज़िला। इसमें जलदुर्ग शामिल होने के कारण ५८ क़िले थे। ६—उत्तर कोकन—आजकल का थाना ज़िला। इसमें १२ क़िले थे। ७—बागलान भिंबक—आजकल के नाशिक ज़िले का पश्चिम भाग। इसमें ६२ पहाड़ी क़िले थे। ८—प्रान्त वनगड़—आजकल के धारवाड़ ज़िले का दक्षिणी भाग। इसमें २२ किले थे। ९—वेदनूर, कोलार और श्रीरङ्गपट्टन—आजकल का माइसोर-राज्य। इसमें अठारह क़िले थे। १०—प्रान्त कर्नाटक—इसमे १८ क़िले थे। ११—प्रान्त वेल्लूर—आजकल

का अर्काट का जिला। इसमें २५ किले थे। १२-प्रान्त तञ्जोर इसमें ६ क़िले थे। ये प्रदेश "स्वराज्य" के अन्तर्गत थे। इनके सिवा परराज्य में भी कई प्रदेश थे, जो तरह तरह के कर दिया करते थे। प्रत्येक प्रान्त में सूबेदार नाम का, आजकल के कलेक्टर के समान, अधिकारी रहता था। प्रत्येक प्रान्त के दो या तीन उपविभाग थे। जिन्हें महाल कहते थे। प्रत्येक महाल का लगान, लगभग पौन लाख से सवा लाख तक आता था। यानी ऐसा अन्दाज़ किया जा सकता है कि शिवाजी के स्वराज्य का नक़द महसूल लगभग पचास लाख तक आता था। सूबेदार का वेतन १००) महीना था। उस समय रुपये की क़ीमत ज्यादह थी। यह बात इस जगह याद रखना चाहिए। "स्वराज्य" में लूट आदि का कोई उपद्रव न हो सकता था। वहाँ रैयत को ज़मीन-महसूल के सिवा कोई अन्य कर न देना पड़ता था। मुल्की व्यवस्था में सैनिक अधिकारियों को कोई अधिकार नहीं था। प्रत्येक गाँव में एक पटेल, एक कुलकर्णी, और दो तीन गाँव मिलकर एक कमावीसदार इतने अधिकारी रहते थे, और इन पर एक तरफदार, अथवा ताल्लुकदार या महालकरी रहता था। ताल्लुकदार के ऊपर का अधिकारी सूबेदार था। प्रत्येक महाल का लगान भिन्न भिन्न क़िलों में लेजाकर रखने की रीति थी। यहाँ यह भी खयाल रखना चाहिए कि इन अधिकारियों को न तो जागीर मिलती थी, न वंशपरम्परा के अधिकार ही प्राप्त हो सकते थे। प्रत्येक को वेतन हर माह सरकारी खज़ाने से मिलता था। केवल मन्दिरों के नाम पर ही ज़मीन दी जाती थी, या कभी कभी विशेष पराक्रम दिखानेवाले को ज़मीन इनाम मिल जाती थी।

(३) क़िले

महाराष्ट्र देश भर में आजकल टूटे-फूटे सैकड़ों क़िले दिखाई पड़ते हैं। ये सब क़िले शिवाजी के समय के हैं और इस महापुरुष की दूरदृष्टि और राजकार्य-चातुर्य की साक्षी दे रहे हैं। इनकी उपयोगिता देखकर मुसलमानी राज्य के सब क़िले उन्होंने दुरुस्त करवाये और रायगढ़, प्रतापगढ़, सिन्धुदुर्ग आदि अनेक नये क़िले भी बनवाये। इन क़िलों के तीन भेद हैं। पानी में अथवा अन्तरीप पर बनवाये हुए को जंज़ीरा या दुर्ग कहते हैं। पहाड़ी क़िले को गढ़ और मैदान के क़िले को भूमिकोट या सिर्फ कोट कहते हैं। रायगढ़, प्रतापगढ़, पन्हालगढ़ ये पहाड़ी क़िले हैं; सिन्धुदुर्ग, सुवर्णदुर्ग, ये जंज़ीरे हैं; बीजापुर सोल्हापुर इत्यादि भूमिकोट क़िले हैं। भूमिकोट को शिवाजी विशेष महत्व नहीं देते थे। विशेष उपयोगी थे—पहाड़ी क़िले और दुर्ग किले। ये कठिन पहाड़ियो पर बनवाये जाते थे ताकि शत्रु की पहुँच वहां न हो सके। क़िलों में सब प्रकार का बन्दोवस्त रहता था। इस कारण घेरा पड़ने पर भी शत्रु का कुछ बस नहीं चलता था। महाराष्ट्र की भौगोलिक रचना ही ऐसी है कि इन किलों की रचना बहुत अच्छी हो सकती थी।

प्रत्येक क़िला और उसके भीतर का प्रदेश शिवाजी के राज्य की मालिका का एक एक मणि ही था। इस मालिका ने महाराष्ट्र के राज्य को दृढ़ कस दिया था और यही उसकी शक्ति थी। इन्ही किलों के सहारे शिवाजी के आश्चर्य्यजनक कार्य सफल हुए। इन्ही के कारण लूट आदि का सामान सुरक्षित पहुँच जाता था। शिवाजी का प्राप्त किया हुआ द्रव्य इन्हीं क़िलों के बनवाने मे और उन्हें

सुरक्षित रखने में खर्च होता था। इन्हीं क़िलों के कारण महाराष्ट्र का पराक्रम मनोरञ्जक भी जान पड़ता है। रायगढ़ का किला शिवाजी की राजधानी थी। कर्नाटक प्रान्त में जिजी नाम का एक क़िला अपने अधिकार में उन्होंने बड़े परिश्रम और खर्च से कर रक्खा था। इस क़िले का कितना उपयोग हुआ है, इसका दिग्दर्शन हम पहले परिच्छेद में कराही चुके हैं। सारांश में यह कह देना ठीक होगा कि यदि यह क़िला न होता तो महाराष्ट्र का स्वराज्य इस महापुरुष के बाद शीघ्र ही अस्त हो जाता। सिंहगढ़ ने तो तानाजी मालसुरे को अमर कर दिया है। प्रतापगढ़ का ख़याल आते ही अफ़ज़लखां की पराक्रमपूर्ण चढ़ाई की याद आ जाती है। सालेर और पेटा नामक क़िलो ने बहुत धन की प्राप्ति करादी है। थर्मापिली की समता प्राप्त करनेवाला रांगना, शिवाजी की जान बचानेवाले महाराष्ट्र अथवा हिन्दुस्तान के बाजी प्रभूरूपी लिओनिदास का स्मरण दिलाता है। दिलेरख़ां को भागने के लिए भूमि भी न देनेवाले मुरारबाजी का नाम पुरन्दर क़िले से सङ्गठित ही है। पन्हाला और विशालगढ़ ये प्राचीन काल से महाराष्ट्र की रक्षा करते आये हैं। अलीबाग़ और मालवन ये शिवाजी के जङ्गी जहाजों के आदि स्थान हैं। जिस क़िले में यह महापुरुष उत्पन्न हुआ वह शिवनेर क़िला हम किस प्रकार भूल सकते हैं! सारांश कि महाराष्ट्र के किलों ने भी ऐसा बड़ा नाम कमाया है।

प्रत्येक क़िले पर एक एक मरहठा हवलदार और उसके हाथ के नीचे उसी की जाति के सहायक, क़िले के नाना भागों की रक्षा के लिए रहते थे। यहाँ और दूसरे अधिकारी एक सबनीस (बहुधा ब्राह्मण) और एक प्रभु कारखाननीस रहते थे। क़िले की रख-

वाली और बन्दोबस्त का काम हवालदार के हाथ में था। जमा-बंदी का काम सबनीस के अधिकार में था और क़िले के आस-पास के प्रदेश की देखभाल भी वही करता था। दाना, घास, बारूद, गोला, मरम्मत आदि का काम कारखाननीस करता था। इस प्रकार क़िलों का काम सुरक्षित चलता था।

(४) सेना

क़िलों की व्यवस्था से शिवाजी की फौज की व्यवस्था की कल्पना हो सकती है। फौज के दो भेद हैं—(१) घुड़सवार और (२) पैदल। घुड़सवार से पैदल ज्यादा थी। इन पैदल सिपाहियों के ऊपर एक नायक, पचास पर एक हवलदार, सो पर एक जुमलेदार, एक हज़ार पर हज़ारी नाम का अधिकारी; ऐसे पाँच हज़ार पर एक सरनौबत नाम का अधिकारी था। घुड़सवार की भी व्यवस्था इसी प्रकार की थी। पच्चीस सवारों पर एक हवलदार, पांच हवलदारों पर एक जुमलेदार, दस जुमलेदारों पर एक सूबेदार, दस सूबेदारों पर पंचहज़ारी नाम का अधिकारी रहता था।

फ़ौज को वेतन नियमित समय पर देना चाहिए, यह शिवाजी का सख्त् नियम था। लोगों की तरफ का बाकी लगान वसूल कर अपना वेतन पूरा कर लें, ऐसा कभी न होने पाता था। नये सिपाही नौकरी में रखते समय उनके चाल चलन की ज़मानत जब पुराने सिपाही देते थे तब वे रक्खे जा सकते थे। तथापि सिपाहियों की कमी कभी न हुई—सदा हज़ारों सिपाही नौकर मिलते ही थे।

शत्रु के मुल्कमें चढ़ाई और लूट करने के विषय में शिवाजी ने वड़े सख्त् नियम वना रक्खे थे। किसी भी ब्राह्मण, स्त्री, किसान, गाय, वालक और दुर्वल मनुष्य को किसी प्रकार की भी

तकलीफ़ न होने पाती थी। सब लूट सरकार में जमा होती थी। तथापि लूट लानेवाले को योग्य इनाम दिया जाता था। लूट का सामान छिपाने से बड़ी कड़ी सजा होती थी। चढ़ाइयों में जो पराक्रम दिखलाते थे उनका दरबार में उचित सन्मान किया जाता था और पदवी-प्रदान इत्यादि से वे सन्तुष्ट किये जाते थे। युद्ध में जो मर जाते थे उनके आप्त स्वकीयों को, योग्यता के अनुसार, नौकरी मिलती थी। लूट के इरादे से शिवाजी जहाँ जाते वहाँ का धन वे बड़ी चतुरता से ढूँढ़ निकालते थे। गुप्त बातों का पता लगाने में वे अत्यन्त प्रवीण थे। इस कारण लोगों की समझ ऐसी हो गई थी कि भवानीदेवी उन्हें सब बातें बतला देती हैं।

शिवाजी के जङ्गी जहाज़ों के बारे में भी हम कुछ जान सकते है। दयासागर, इब्राहीमखां और मायनाक भण्डारी ये तीन सज्जन इन जहाज़ों के मुख्य सरदार थे। जहाजी बेड़ा बढ़ाने की शिवाजी की बहुत इच्छा थी। अंग्रेज लेखक लिखते हैं—"वह स्वयं नाविक नही था; यह अच्छा हुआ! नहीं तो उससे समुद्र भी न बचा होता" उन्हें समुद्र बहुत प्रिय था। बचपन में वे पहाड़ में आकर रहे थे। सिन्धु-दुर्ग का क़िला बनवाने में उन्होंने विशेष रूप से बहुत श्रम किया था। समुद्र पर भी उनके आदमियों ने अनेक प्रकाक्रमपूर्ण कार्य किये हैं।

इस प्रकार शिवाजी की राज्य-व्यवस्था थी और प्रत्येक स्थान पर उनकी अतुलनीय कुशलता दृष्टिगोचर होती है। इनमें से अनेक तत्व आज की परिस्थिति में भी प्रचलित हैं, यही उनके कार्य और कल्पना की महत्ता के प्रमाण हैं।

छठा परिच्छेद

शिवाजी के उद्देश्य

इस महापुरुष की योग्यता जानने के लिए उसके उद्देश्य भी जानना अत्यावश्यक हैं। वस्तुत: उद्देश्य तो इस महापुरुष की कृतियों से जानना चाहिए; परन्तु कृतियों का अर्थ करते समय मनोविकारों से दूर रहना अत्यावश्यक है। ग्रन्थकार विकारवश होकर कोई तो शिवाजी को आकाश पर चढ़ाने की इच्छा से और कोई नीचा दिखाने की इच्छा से कुछ का कुछ बतलाते है। इसलिए शिवाजी के उद्देश्य विकारहीन होकर जानने की चेष्टा यथासम्भव करना ही ठीक होगा।

(१) शिवाजी ने कार्य किस परिस्थिति में शुरू किया ? मराठाशाही रही न थी, मराठों का राज्य अस्त हो चुका था। मराठे केवल छोटे छोटे सरदार रह गये थे। हिन्दू—धर्म मृत-प्राय हो गया था। भयहीन होने के कारण मुसलमान राजा मनमाना अत्याचार करने लग गये थे। सारांश यह कि महाराष्ट्र में हिन्दू-जाति और धर्म की श्रेष्ठता को नीचा तो देखना ही पड़ा था, पर उनके लोप हो जाने की जब आशङ्का हुई तब शिवाजी ने अपनी कमर कसी। यह ख़याल रखना चाहिए कि दक्षिण के मुसलमानी राज्य और उत्तर की बादशाही में बहुत भेद था। अकबर के समय से मुग़ल बादशाहत बढ़ती चली आ रही थी और दक्षिण के मुसलमानी राजा उसे किसी प्रकार अपना नहीं सकते थे। अर्थात् दक्षिण में केवल बीज़ापुर, गोलकुण्डा, इत्यादि

राजाओं की प्रतिष्ठा थी, और उन्हीं की कृतियाँ महाराष्ट्र के संमुख थीं। दक्षिण से और मुग़लशाही से बहुत कम सम्बन्ध था। ऐसी दशा मे अगर कुछ विचार पैदा हों तो केवल दक्षिण के विषय में ही हो सकते हैं। तमाम हिन्दुस्थान के विषय में शिवाजी के मस्तिष्क में विचार उत्पन्न होना असम्भव ही था! सारांश कि जब शिवाजी स्वराज्य, स्वतन्त्रता और स्व-धर्म के उद्धार के हेतु सन्नद्ध हुए तब वे तमाम हिन्दुस्थान के विषय में न सोचते रहे होंगे, केवल महाराष्ट्र का ही वे विचार कर सकते थे; अर्थात् केवल महाराष्ट्र में ही स्वराज्य स्थापित करना चाहते थे।

(२) यह तो परिस्थिति से निश्चित होता है। क्या उनकी कृति से भी कुछ मालूम होता है? विरुद्ध पक्षवालों से हमारा प्रश्न है कि अगर उनका उद्देश्य तमाम हिन्दुस्थान जीतने का था तो उन्होंने समय समय पर बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों को बचाने का क्यों प्रयत्न किया? अगर वे भी मुग़लों से मिल कर इन्हे नेस्तनाबूद करने का प्रयत्न करते तो महाराष्ट्र राज्य की सीमा थोड़े ही काल में महाराष्ट्र के बाहर पहुँच जाती। यदि मुसलमानी राज्यों को नामशेष करने का ही उनका विचार होता तो उन्हें मुग़लो से बचाने का क्या कारण था? और समय पाकर वे उन्हें बिलकुल निगल जाते। अगर उन्हें मुसलमानों के नाम से ही द्वेष होता तो उन्होने अपने राज्य में, अपनी नौकरी में मुसलमान रक्खे ही क्यो? यदि मुसलमानी धर्म से उन्हें घृणा थी तो कुरानशरीफ हाथ में आ जाने पर उसको आदरपूर्वक किसी मुसलमान के हाथ में क्यों देते? इन प्रश्नों के उत्तरों पर शिवाजी के उद्देश्य का प्रश्न भी अवलम्बित है। शिवाजी का विचार न तो

सब मुसलमानी राज्यों को नष्ट करने का था, न मुसलमानी धर्म दूर करने का था। हिन्दू-धर्म का ह्रास हो चुका था और स्वराज्य न होने से अत्याचार होता था, इस कारण इनका उद्धार करना आवश्यक था। जब रेलगाड़ियाँ नहीं थीं, जब तार और डाक की व्यवस्था नहीं थी, जब केवल एक प्रान्त की बात दूसरे प्रान्त में जानने के लिए महीनों बीत जाते थे, जब समस्त भारत का नकशा सामने न था, तब यह कहना कि शिवाजी का मन समस्त भारत में चक्रवर्ती राज्य करने का था, हमें तो केवल धृष्टता ही जान पड़ती है। जिन्हे इतिहास का अर्थ समझ न पड़ता हो वे भले ही कुछ का कुछ कहते रहे। प्राचीन और अर्वाचीन, पश्चिम और पूर्वी इतिहास के पढ़ने से हमें तो यही जान पड़ता है कि शिवा जी की दृष्टि में केवल महाराष्ट्र समाया हुआ था, समस्त भारत नहीं।

(३) परन्तु क्या उस समय के विचारों से भी कुछ जाना जा सकता है ? अगर हम उस समय का साहित्य उठाकर देखें तो हर आदमी केवल महाराष्ट्र का ही विचार करता सा जान पड़ता है, समस्त भारत की कल्पना किसी के दिमाग़ में नहीं दिखाई देती। इतना ही नहीं, वरन् स्वामी रामदास ने भी यही उपदेश शिवाजी को दिया था। "मराठा तितुका मेलवावा। महाराष्ट्र धर्म वाढ़वावा" इन शब्दों में क्या महाराष्ट्र-परिमित कल्पना स्पष्टतया दर्शित नही होती ? मराठे उस समय समस्त भारत में नहीं रहते थे। महाराष्ट्र-धर्म की कल्पना केवल महाराष्ट्र में ही थी। इस पर भी एक दो इतिहासकार इन शब्दों को भूल जाते हैं और शिवाजी की कल्पना सार्वभौम राज्य करने की थी, यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं। इन्हीं में श्रीयुत गोविन्द सखाराम सर

देसाई, बी० ए० भी हैं।* खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस ग्रन्थकार ने शिवाजी को सब कुछ बनाने के प्रयत्न में एक बड़ी भारी ग़लती की है। न जाने क्यों इन्हें इसी बात में शिवाजी का बड़प्पन जान पड़ा और मनमाने आधारहीन सबूत ढूँढ़ निकाले हैं। उनमें से कुछ संक्षेप में हम यहाँ देते है। आप लिखते हैं:—

(१) "वसई मे बाजीराव ने मराठों के गले की स्वतन्त्रता की माला एक दम निकाल कर अंगरेज़ों के गले मे डाल दी। इस पर भी मराठे लड़ते ही रहे। तो क्या इसमें सातत्य, एक प्रकार के दूरदर्शित्व और कर्त्तव्य की निश्चित दिशा नही जान पड़ती?"

(२) "छत्रपति नाम विशिष्टार्थ-सूचक ख़िताव अपने नाम के साथ जोड़ने का क्या कारण था? तख़्तावर जीतने का कोई सबब होना ही चाहिए?"

(३) "चौथाई और सरदेशमुखी वसूल करने में उनका कुछ विशेष हेतु जान पड़ता है।"

(४) "समुद्र-किनारे अपने कब्ज़े में रखने में भी विशेषता दिखाई पड़ती है।"

पाठक ही जान लेंगे कि इन वाक्यों में कुछ भी सार नहीं है। प्लासी की लड़ाई जीतने का क्लाइव का निश्चय था, इसलिए क्या यह भी कहना सत्य होगा कि रंगून से कराची तक और काश्मीर से कन्याकुमारी तक राज्य करने का उसका विचार था? अथवा क्या यह कहना सत्य होगा कि सिक्ख, मराठे और मुसलमानो से अंगरेज़ लड़े, इसलिए ३१ दिसम्बर १६०० ईस्वी को

* हिन्दुस्थान का इतिहास, भाग दूसरा, पूर्वार्ध पृष्ठ २५७—२६० देखिए।

जो कम्पनी लण्डन में बनी वह इस देश को जीतने के ही विचार से यहाँ आई ? अथवा क्या यह कहना ठीक होगा कि आजकल अमेरिका में आंग्लसन्तति राज्य कर रही है, तो उनके पूर्वज, जो मेफ्लावर में चढ़ कर वहाँ गये थे, वे इसी विचार से गये थे ? प्रसङ्ग उपस्थित होने पर जो होता, गया उससे पूर्व विचार की कल्पना करना केवल अपने ऐतिहासिक ज्ञान की सङ्कीर्णता दिखलाना है ! यह किसे मालूम नहीं कि पुराने ज़माने में जो भारी राजा बन बैठा वह छत्रपति कहलाने ही लगता था ? हां, इसका हेतु इतना अवश्य जान पड़ता है कि महाराष्ट्र में और कोई राजा न रहने पावे, जो रहे सो इनसे दब कर रहे । चौथाई और सरदेशमुखी वसूल करने में एक हेतु तो यह था कि स्वराज्य का मामला चलता रखने के लिए द्रव्य मिलता रहे। दूसरे, अगर उस राज्य के जाने का मौका ही आन पड़े तो दूसरों के हाथ न जाने पावे । यह तो राजनीति का तत्व ही है। अगर आप अपना घर नहीं बचा सकते और आप हमारे पास रहते हों तो आपका घर हमे ले ही लेना चाहिए, नहीं तो किसी दिन हमारा ही घर चला जायगा । अतएव इसमे कोई विशेष हेतु ढूँढ़ना व्यर्थ है । समुद्र-किनारा एक तो महाराष्ट्र की पश्चिम और चरम सीमा थी, दूसरे उधर से डर भी था । इसलिए ऐसा स्थान शिवाजी को अपने हाथ मे रखना ही पड़ा । यह उन्हें आत्म-रक्षा के हेतु ही करना पड़ा । जिसे अंगरेज़ी राज्य के विस्तार का इतिहास ज्ञात है, जिसे रोम की सत्ता की वृद्धि का इतिहास मालूम है, जिसे एशिया का इतिहास अवगत है, वह यह भी जान लेगा कि जब पड़ोसी कमज़ोर हो जाता है तब केवल स्वरक्षा की दृष्टि से—बिना लोभ के भी—

आसपास के राज्यों पर अपना अधिकार बनाये रखने की इच्छा करनी ही पड़ती है। बस, यही बात महाराष्ट्र-राज्य की वृद्धि में भी पाई जाती है। उसका दुरर्थ करके मनमानी बात रचते रहना इतिहासकर्ता के लिए ठीक नहीं। जो पुरुष जिस प्रकार का हो, वह उसी प्रकार दिखाया जाय। बढ़ाना या नीचे गिराना इतिहासकर्ता का कर्त्तव्य नहीं है। यह द्वेषी या खुशामदी जन का ही काम है। हम तो इस विषय में न्यायमूर्ति रानाड़े के विचारों ही से सहमत है, श्री० सर देसाई के विचारो से नहीं।

सातवाँ परिच्छेद

शिवाजी की अन्य पुरुषों से तुलना

किसी बात को जानना हो तो हम बहुधा दृष्टान्त द्वारा उसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। किसी पुरुष की योग्यता जाननी हो तो परिचित पुरुषों के उदाहरणों से उसे अच्छी तरह जान सकते है। और यह हम आप सब रोज़ किया करते है। इसी न्याय से शिवाजी की योग्यता मालूम करना अनुचित न होगा। परन्तु एक दो बाते हम यहाँ कह कर आप को सावधान कर देना उचित समझते हैं। कोई भी दो पुरुष संसार में कभी एक समान नहीं होते। प्रत्येक मनुष्य की कृति और स्वभाव भिन्न है और यह बात सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। जब हम कभी दो पुरुषो की तुलना करते हैं तब बहुधा किसी विशेष बात को सामने रख कर ही उन्हें तौलते हैं, सब बातों में उन्हें समान

समझ लेते। उस विशेष बात का विचार करके कौन अधिक है, और कौन कम है, इस बात का निश्चय करते हैं। एक पुरुष की सब बातें लेकर दूसरे किसी पुरुष की सब बातों से तुलना करने लगें तो हम कभी सफल न होगें, न कुछ निर्णय ही कर सकेंगे। दूसरे, प्रत्येक पुरुष की परिस्थिति का भी ख़याल रखना उचित है। परिस्थिति को भूल कर अगर हम न्याय करने बैठें तो हमारा निर्णय कठोर सा जान पड़े और कभी अन्याय भी होजाय। इन दो बातों का ध्यान रखकर ही तुलना के कार्य में लगना ठीक होगा।

(२) साधारणतः पश्चिमी ग्रन्थकारों ने शिवाजी की तुलना हैदरअली, यशवन्तराव होलकर इत्यादि लोगो से की है। अथवा बहुधा इन पुरुषों का वर्णन करते समय शिवाजी का ही दृष्टान्त दिया है। परन्तु जैसा हम कह चुके हैं, विकारहीन और सहृदय पुरुष ही शिवाजी की सच्ची योग्यता जान सकते है। ये सब लुटेरे थे और शिवाजी भी लुटेरा था; इसमें से शिवाजी के लुटेरेपन का विचार हम कर चुके हैं। अगर शिवाजी के कार्य को लूट कहें तो भी यह अवश्य याद रखना चाहिए कि इस लूट से स्वतन्त्रता, स्वराज्य और स्वधर्म का उद्धार हुआ है। हैदरअली ने दूसरो का स्वातन्त्र्य नष्ट करके केवल फौज के जोर पर उन्हे अपने को 'त्राहि भगवान्' कहने के लिए वाध्य किया। शिवाजी से प्रजा सुख पाती थी; हैदरअली की दृष्टि स्वार्थ से अंधी होगई थी। लोगों का सुख और निष्ठा एक के राज्य के आधार-स्तम्भ थे, पर दूसरे के राज्य का वल तलवार का ज़ोर था। एक ने मुसलानों के धर्म का कभी अनादर न किया तो दूसरे ने हिन्दू-धर्म को पैरों तले कुचलने में अपनी शक्ति व्यर्थ खोई।

(३) कई लोगों ने शिवाजी की तुलना ग्रीस के बादशाह सिकन्दर से की है, परन्तु वह भी सर्वथा ठीक नहीं मालूम होती। दोनों के समय, कर्तव्य और फलप्राप्ति में बड़ा अन्तर है। जगत् को जीतने की अथवा दिगन्त में कीर्ति फैलाने की इच्छा शिवाजी ने कभी नहीं की। स्वराष्ट्र की स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेना ही उनका इति कर्तव्य था। सिकन्दर तो सारी दुनियाँ ही जीतना चाहता था। केवल विजय के सिवा उसने और कुछ भी नहीं किया। जित प्रदेश की राज्य-व्यवस्था का उसने कुछ भी ख़याल न किया। परन्तु शिवाजी की बात इससे भिन्न थी। शिवाजी कोई ऐसा देश जीतने के फेर में नहीं पड़े जिसकी राज्य-व्यवस्था करना कठिन हो। सिकन्दर कितना भी भारी जगज्जेता क्यों न कहलावे, वह शिवाजी के बराबर नहीं हो सकता। और एक बात ख़याल रखनेलायक है। सिकन्दर के पिता के पास पहले ही बड़ा भारी राज्य था। पर शिवाजी के पास क्या था? केवल छोटी सी जागीर। फिर भी ख़याल रखना चाहिए कि शहरों के ऊपर कब्ज़ा करने के बाद वहां के लोगों को क़तल करना, अमूल्य ग्रन्थ-संग्रह से अग्नि का तर्पण करना, शरणागत क़ैदियों को यमसदन को पहुँचाना और सुरादेवी की भक्ति करते करते उन्मत्त हो जाना, इत्यादि बातों से शिवाजी सैकड़ों कोस दूर थे। इन बातों में तो सिकन्दर ही सिकन्दर था।

(४) योरप के इतिहास में नेपोलियन बोनापार्ट एक महाव्यक्ति हो गया है। कुछ बातों में तो ये दो महापुरुष बिलकुल विरुद्ध थे; पर कुछ बातों में उनकी समता भी हो सकती है। बुद्धि और कल्पकता, दूसरों पर अपना रोब जमाने की विलक्षण कुशलता, स्वराष्ट्र को अर्जित करने की इच्छा इत्यादि महापुरुषों के गुण दोनों

में थे, पर देशकालानुसार दोनों की कृतियाँ अत्यन्त भिन्न थीं। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में योरप में राष्ट्र राष्ट्र के बीच स्पर्धा उत्पन्न होगई थी। उन लोगों की शिक्षा ही अन्य प्रकार की थी, इस कारण वहां बुद्धिमान् पुरुष को अपना नाम दिगन्त करने का जितना अवकाश था उतना हिन्दुस्थान में नहीं था। बड़प्पन प्राप्त करके अखण्ड कीर्ति कमाने का अवकाश नेपोलियन को मिला। यह महापुरुष फ्रान्स का विद्वान्, लेखक और अच्छा वकील था। शिवाजी को उस प्रकार की कुछ भी शिक्षा न मिली थी। प्राकृतिक बुद्धिमत्ता और अनुभव दोनों मे समान थे, परन्तु शिक्षा से एक के गुणों का तो विकास हुआ, पर दूसरे को वह अवसर ही प्राप्त न हुआ। फिर फ्रान्स के समान सम्पन्न देश में कला, विद्या इत्यादि सार्वजनिक लोकोपयोगी कार्यों में सुधार करके स्वदेश को उन्नत करने का मौक़ा मिला, परन्तु हिन्दुस्थान की स्थिति शिवाजी के समय में अत्यन्त भिन्न थी। इसके सिवा आष्ट्रीया, रशिया, प्रशिया, इंग्लैंड इत्यादि रणशूर राष्ट्रो से लड़ने का मौक़ा जो नेपोलियन को मिला वह शिवाजी को मिलना असम्भव था। इस कारण इन बातों में इस फ्रेंञ्च महापुरुष से महाराष्ट्रीय वीर हीन जान पड़ता है। परन्तु यहां और अनेक बातें ध्यान मे रखनी चाहिएँ। कुछ भी हो, नेपोलियन के कारण योरप में जो प्राणहानि हुई, वह हिन्दुस्थान में कभी नहीं हुई और शिवा जी के हाथ से तो प्राणहानि नाम-मात्र को ही हुई होगी। परन्तु सबसे भारी बात यह है कि नेपोलियन अत्यन्त महत्वाकांक्षी था, पर शिवाजी ऐसे विकारो से कितने दूर थे, यह हम दिखला ही चुके हैं। गीता का कर्मयोग शिवाजी के रोम रोम मे भरा था।

नई फ़ौज तैयार करना, क़िले बनाकर देश का बन्दोबस्त करना, और सब देश में सरल राज्य-व्यवस्था स्थापित करके उसे समृद्ध करना इत्यादि बातों में दोनों समान थे। परन्तु नेपोलियन के कार्य की नींव फ्रांन्स के समान सम्पन्न देश पर थी। शिवाजी की नींव कुछ थी ही नहीं। सब देश पराधीन था। उसे स्वतन्त्र करने का भार उन पर आ पड़ा था। इसके विपरीत नेपोलियन ने एक सम्पन्न देश को महत् पद पर चढ़ाने का प्रयत्न किया। इसमें नेपो-लियन ने कौन भारी प्रशंसनीय कार्य किया ? अत्यन्त महत्वाकांक्षा और बुद्धि से नेपोलियन ने केवल सारे संसार की शत्रुता सम्पा-दित की। परन्तु शिवाजी ने यह नींव डाली थी, जिसके भरोसे मराठों ने औरंगज़ैब के समान प्रचण्ड बादशाह को हराया।

(५) सच तो यह है कि ऐसा पुरुष जिससे शिवाजी की तुलना हो सके अप्राप्य है। कुछ बातों में बाबर से तुलना हो सकती है। बाबर का पैतृक राज्य दूसरों के हाथ में चला गया था। शिवाजी के समान ही उसका भी जीवन आपत्तिमय रहा और केवल साहस बुद्धि और कट्टर स्वभाव के कारण उसने हिन्दुस्थान की बादशाहत की। शिवाजी के सदृश ही वह भी माता के वचन को पूज्य मानता था। बाबर शूर तो था ही; पर राज्य-व्यस्था भी उसकी बुरी न थी। शिवाजी की तरह वह अल्पायुषी रहा, तथापि बाबर ने भी परदेश को जीता। शवाजी बाबर के समान शूर और कट्टर, अकबर के समान सब पर समदृष्टि से राज्य-व्यवस्था करने में कुशल और शाहजहां के समान मितव्ययी रहकर प्रजा के सुख को वढ़ाने में निमग्न थे। बाबर और अकबर के समान ही इस महापुरुष ने अनेक सङ्कटों का सामना किया था; इस कारण

ग़रीब लोगों की दशा वे अच्छी तरह जानते थे। तथापि वे जहाँ-गीर और शाहजहाँ के समान ऐशोआराम में मग्न न थे। औरंग-ज़ेब के समान बड़ी भारी उद्योगशीलता शिवाजी में थी, पर उसके कपट और विश्वासघात से कोसों दूर थे।

(६) कुछ बातों में आलफ्रेड दी ग्रेट से उनकी तुलना हो सकती है। इंग्लैंड को स्वतन्त्रता प्राप्त करादेने का कार्य (९वीं शताब्दी के अन्त में) इस महापुरुष ने किया। सारे इंग्लैंड को डेन लोगों ने व्याप्त कर डाला था। उनसे उसने देश को बचाया और "महापुरुष' कहलाने का पात्र हुआ। इस दृष्टि से शिवाजी की योग्यता उससे बहुत अधिक है।

(७) सोलहवीं सदी में स्पेन की सत्ता बहुत बढ़ गई थी। हालैंड, इटली इत्यादि देश स्पेन के अधीन थे। उसी समय ईसाई-धर्म में सुधार करने का झगड़ा उत्पन्न हुआ था और योरप में नए मत बहुत प्रचलित होने लग गये थे। ऐसे समय में स्पेन ने हालैंड पर बड़ा जुल्म किया, और डच प्रजा अत्यन्त क्षुब्ध हो गई। स्पेन के राजा फिलिप के दो हेतु थे—एक तो डच लोगों को प्रोटेस्टंट न बनने देना और दूसरे उस देश पर अपना राज्य क़ायम रखना। बुद्धि, दरिद्रता, स्वराष्ट्राभिमान इत्यादि गुणों में डच और महाराष्ट्रीय समान जान पड़ते हैं *। जैसी परिस्थिति परिस्थिति में शिवाजी उत्पन्न हुए उसी स्थिति में हालैण्ड का त्राता ओरेंज का सरदार विलियम पैदा हुआ। दोनों महापुरुषों को जो युद्ध करने पड़े उनमें भी बहुत समता है। ऐतिहासिक

---

* इन दो राष्ट्रों की सविस्तर तुलना हम पहले कर चुके हैं।

दृष्टि से उस देश का इतिहास भी बड़ा मनोरञ्जक और बोधप्रद है। शिवाजी से लगभग एक सदी पहले यह बात हालैण्ड में हुई। पर स्पेन के लोग धर्म के सम्बन्ध में जितने क्रूर थे, उतने क्रूर मुसलमान न थे। परन्तु बाक़ी इतिहास राजाराम और तारा बाई तक का समसमान है। गुणों में दोनों पुरुषों की बहुत समता है। दोनों बड़े दूरदर्शी, दीर्घप्रयत्न, निज के विषय में निरीच्छ और केवल स्वदेश के हित के लिए शक्ति खर्च करनेवाले थे। दोनों ने स्वदेश को स्वतन्त्रता प्राप्त करा दी। दोनों देशों में स्वतन्त्रता के भी परिणाम समान ही हुए। मराठों का प्रभाव बढ़ता बढ़ता बहुत अधिक हो गया। उसी प्रकार डच लोग योरप में प्रमुख हुए। दोनों का उद्गम बहुत क्षुद्र था।

(८) अब कोई कहेंगे कि हम कुछ का कुछ ही कह रहे हैं। परन्तु हम ऊपर जिन तत्वों का ज़िक्र कर चुके हैं, उन पर ध्यान रखने से हमारी तुलना ठीक जान पड़ेगी। केवल परिणाम से पुरुष की योग्यता निश्चित करना युक्तियुक्त नहीं। इस न्याय से तो वारेन हेस्टिंग्ज़ और डलहौसी लोग भी बड़े भारी समझे जाएँगे। परन्तु सदाचार के नियमों का स्मरण रखना उचित है। इसी कारण आल्फ्रेड, नेल्सन, सिकन्दर, सीज़र, बोनापार्ट इत्यादि रणवीरों से शिवाजी अधिक योग्य है। आल्फ्रेड ने दुनिया का दिग्विजय नहीं किया, तथापि वह महापुरुषों में गिना जाता है। इसी प्रकार मर्यादित क्षेत्र में कार्य करके किसी की स्वतन्त्रता को न कुचलने और प्राणहानि का पाप न करते हुए शिवाजी ने अपना कार्य किया। इसी कारण शिवाजी महापुरुष है। स्वराष्ट्र और स्वधर्म के परे शिवाजी ने प्रयत्न नहीं किया। इसी कारण शिवाजी

को सीज़र की तरह क़त्ल हो जाने का मौक़ा न आया, बोनापार्ट के समान शत्रुओं को क़ैद में सड़ते रहने का अवसर न आया, अथवा सिकन्दर के समान लोगों के शाप सहने का अवसर प्राप्त न हुआ।

(९) अगर किसी अंगरेज़ सज्जन से पूछिए कि आप नेल्सन का इतना अधिक आदर क्यों करते हो तो वह कहेगा "आप भी अंगरेज़ बन जाइए तो जान जाइएगा।" यही न्याय शिवाजी के लिए, इससे भी अधिक उपयुक्त है। चारों ओर राज्यक्रान्ति है, अत्याचार हो रहा है, धर्म रसातल को जा रहा है, राष्ट्र नष्टभ्रष्ट हो रहा है; ऐसे समय में जो त्राता मिले उसके गुणानुवाद गाने में हमारी जीभ नहीं थक सकती। सारांश में हम यही कहते हैं कि शिवाजी के समकालीन बन जाइए, तब आप इस महापुरुष को अच्छी तरह से पहचान सकेंगे।

आठवाँ परिच्छेद

शिवाजी के विरुद्ध आक्षेपों पर विचार।

इस भाग में शिवाजी के विरुद्ध बार बार जो आक्षेप किये जाते हैं उन पर विचार और उनका समाधान करना है:-

(१) शिवाजी पर पहला आक्षेप यह किया जाता है कि शिवाजी लुटेरे थे। इससे शिवाजी की योग्यता बहुत कम हो जाती है। जिस पुरुष में इतनी योग्यता होने पर भी यह दोष हो, वह सचमुच अयोग्य पुरुष समझा जायगा। इस आक्षेप का दिग्द-

र्शन और उसका थोड़ा सा उत्तर हम पहले एक जगह दे चुके हैं। अब यहाँ सविस्तर विवेचन किया जाता है।

शिवाजी की पूर्वकालीन और समकालीन परिस्थिति तो दिखा ही चुके हैं। उससे स्पष्ट होगा कि देश के स्वातन्त्र्य का मार्ग जो इस पुरुष ने निर्धारित किया उसके सिवा अन्य कोई मार्ग सम्भव ही नही था। वह काल ऐसा था जब कि गुप्त षड्यन्त्रो का प्रयोग कर, जैसा कि कई देशों के इतिहास में दिखलाई पड़ता था, स्वतन्त्रता नही मिल सकती थीं। खुल्लमखुल्ला मैदान मे आकर बलपूर्वक देश के क्रमशः स्वतन्त्र करने के सिवा अन्य उपाय न था। ऐसी स्थिति में द्रव्य की जो ज़रूरत पड़ती, वह कैसे पूरी होती? अथवा कोई कम्पनी खड़ी की जाती जिसके सहारे महाराष्ट्र देश का स्वातन्त्र्य युद्ध चलाया जाता? कौन सा ऐसा उपाय उस परिस्थिति मैं आप बतला सकते हैं जिससे कि यह देश अपनी स्वतन्त्रता फिर से प्राप्त कर लेता? इसके लिये शिवाजी का ही उपाय सर्वोत्तम था। जो उनमें शामिल हो जाते, वे तो इस पवित्र कर्तव्य के करनेवाले ही थे, पर जो शामिल न होते और शत्रु का काम करते अथवा भोगविलास में अपना काल बिताते थे, क्या वे क्षमा किये जाने के योग्य थे? यह काम राष्ट्रीय था। इससे होनेवाला लाभ भी राष्ट्रीय था। इसलिए समस्त राष्ट्र का कर्त्तव्य था कि तन, मन, धन, से सहायता करें। अनेक देशों की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के इतिहास में यह एक आश्चर्य की बात देख पड़ती है कि लोग अपनी जान देने को तो तैयार हैं, पर धन देने को नहीं! मेज़िनी अपने आत्म-चरित्र में बारम्बार इसी बात पर आश्चर्य प्रकट करता है कि जो लोग अपनी जान खतरे में

को तैयार हैं, वेही अपने धन से किसी प्रकार जुदा नहीं होना चाहते ! फिर शिवाजी महाराष्ट्र को स्वतन्त्रता कैसे प्राप्त कराते ? राजी-खुशी से नहीं तो सख्ती से ही द्रव्य लेना आवश्यक था। इसी का नाम मुसलमान इतिहासकारों ने "लूट" रक्खा, जिसका अनुवाद पाश्चात्य ग्रन्थकार भी करते आये है। मुसलमानों का इस प्रकार लिखना तो क्षम्य था, पर सत्यप्रिय पाश्चात्य इतिहासकारों को वही अनुकरण करते देख आश्चर्य और खेद होता है ! शिवाजी की लूट की पद्धति के विषय मे हम कह ही आये हैं कि शिवाजी नगर नगर गाँव गॉव जाते और वहॉ के अगुओं से वहाँ की स्थिति के अनुसार द्रव्य मॉगते थे। इन लोगों का कर्तव्य होता कि वे उतना ही धन उस गॉव से एकत्र कर उनके हाथ दे देते, और शिवाजी अपना रास्ता लेते। यदि लोग द्रव्य देने से इन्कार करते तो गाँव में शिवाजी के लोग घुस जाते और ज़बरदस्ती द्रव्य ले आते। अगर सशस्त्र प्रतीकार होता तो उसका भी सामना उसी प्रकार किया जाता। पर किसी भी अवस्था मे ग़रीब, बालक, स्त्री, वृद्ध और किसानों को किसी प्रकार कष्ट न दिया जाता, न कभी अनावश्यक खून किया जाता ! बर्नियर नामक एक फ्रेंच प्रवासी लिखता है—"शिवाजी कहा करते थे 'कि ये फिरङ्गी पादरी बहुत सज्जन हैं इसलिए उनको कष्ट न देना चाहिए'।" डिलेस नामक एक डच व्यापारी सूरत मे था। वह बड़ा दानी और धर्मनिष्ट प्रसिद्ध था। इस कारण उसे शिवाजी ने कभी नहीं सताया। सूरत में एक यहूदी व्यापारी रहता था। बादशाह के पास बेचने के लिए उसने बहुत से बहुमूल्य रत्न एकत्र किए थे। इस बात की खबर शिवाजी को लगी। तीन बार उसे मार डालने

की धमकी दी; पर उसने द्रव्य न दिया आख़िर शिवाजी ने उस को छोड़ दिया।*

इस लूट को अगर लूट कहें तो चार्ल्स प्रथम के जबरन लिए हुए कर्ज और राजीखुशी के दान (Forced loans and benevolences) के विषय में क्या कहा जाय, यह हमारी समझ में नहीं आता! लूट का शब्दशः अर्थ है कि किसी के बिना जाने उस पर चढ़ाई करके उसका द्रव्य छीन ले जाना। यह शिवाजी की लूट का वर्णन ऊपर करही चुके हैं। पाठक स्वयं देख सकते हैं कि शिवाजी के ढंग को लूट कह सकते हैं या नहीं? शिवाजी की लूट स्वराज्यप्राप्ति के लिए केवल एक प्रकार का कर ही था। शिवाजी का राज्य ज्यों ज्यों स्थिर होता गया त्यों त्यों लूट का क्रम बन्द होता गया और कर आदि के रूप में वे अपने अफ़सरों के द्वारा, आजकल की तरह, द्रव्य इकट्ठा करते थे। कई राजसंस्थापकों को ऐसा करना ही पड़ा है, विजयी विलियम ने इंग्लैंड जीतने पर अंग्रेज़ ज़मींदारों की ज़मीन ज़ब्त करली और अपने नार्मन अनुयायियों को देदी। द्रव्य प्राप्त करने की वारेन हेस्टिंगज़ की पद्धति का ख्याल करते हैं तो शिवाजी की युक्ति अत्युत्तम मालूम होती है। सीज़र और सिकन्दर क्या पराजित देशों से अपार द्रव्य नहीं लूट लेगये! मुसलमान सुलतानों ने क्या हिन्दुस्तान का द्रव्य लूट गज़नी और ग़ोर में लेजा कर नहीं रक्खा? पर लुटेरा केवल शिवाजी और बाकी सब साह!!! और जब ख़याल आता

---

* बर्नियर लिखता है—"जान की अपेक्षा धन का अधिक मूल्य समझना लोगों का स्वभाव ही है।"

है कि शिवा जी की पद्धति अत्यन्त सौम्य थी और उन्होंने यह सब देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए किया, तब तो हमारा आश्चर्य लाखों गुना बढ़ जाता है !! *

(२) शिवाजी पर दूसरा आक्षेप यह है कि उन्होंने विश्वासघात करके अफज़लखां का बध किया। यह आक्षेप बड़ा भारी है और उसका दूर करना बड़े महत्व का, पर ज़रा कठिन, कार्य है।

जब बीजापुर दरबार ने देखा कि शिवाजी को पकड़ना या हराना टेढ़ी खीर है तब विचार हुआ कि कोई बड़ा सेनापति शिवाजी पर आक्रमण करने के लिए भेजा जाय। किसी की हिम्मत न हुई कि शिवाजी पर चढ़ाई करे। निदान अफ़ज़लखॉ इस काम के लिये तैयार हुआ। रास्ते में तुलजापुर और पंढरपुर के मन्दिरों को ध्वंस करता हुआ वह आया था। यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके साथ बड़ी प्रचंड सेना थी और वह स्वयं भी बहुत बलवान मुसलमान था। शिवाजी को जिन्दा या मरा किसी भी स्थिति मे पकड़ लाने के लिये उसने प्रण किया था। शिवाजी के प्रति द्वेष उसमें कूट कूट कर भरा था। उसकी धारणा थी कि शिवाजी को देखते देखते पकड़ लाऊंगा। उसकी प्रचण्ड सेना और बल को देख शिवाजी की हिम्मत न हुई कि उसका सामना करें। आखिर उन्होने यह निश्चय किया कि अफ़ज़लखॉं से मेल किया जाय। शिवाजी ने मेल करने का संदेशा भेजा, पर अफज़लखां की कार्रवाइयो पर उनकी सूक्ष्म दृष्टि लगी ही रही। जो

* पर हाँ, यहाँ इतना स्वीकार करना चाहिए कि १८ वीं सदी में पेशवा और मराठे सरदारों ने शिवाजी का तत्व न समझ कर उनका कार्य जारी रक्खा, इस कारण उनके कार्यों को लूट कहना अयोग्य न होगा।

कुछ उन्होंने देखा सुना, उससे उन्हें मालूम होगया कि बड़ी साव-धानी ही से रहना चाहिए। अफ़ज़लखां को हमेशा यही गर्व बना रहा कि मैं शिवाजी को चाहे जब पकड़ लाऊँगा। वह हमेशा अपने घमण्ड में चूर रहता था और इसी कारण उसने कोई परवाह न की। पर शिवाजी उसकी ज़रा ज़रा सी बात पर पूरा ध्यान रखते थे। यहाँ तक कि अफ़ज़लखां से मिलने के पहले उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया था कि यदि धोखे से कहीं मारे गये तो राज्य की क्या व्यवस्था की जाय। जङ्गल साफ करके चारों तरफ फौज रखदी गई थी। इस पर भी यह खयाल रखना चाहिए कि वे किसी प्रकार का धोखा देना नहीं चाहते थे; क्योंकि यदि धोखा देना ही चाहते तो वे अपनी जान खतरे में कभी न डालते। यह काम और किसी तरह भी होजाता। जब भेंट हुई तो अफ़ज़लखां ने शिवाजी को आलिङ्गन करते समय उन्हें अपनी छाती से खूब दबाया और नंगी तलवार ले हाथ ऊपर उठाया। बस, यदि शिवाजी बुद्धिमान न होते और पहले से सब बातों पर उन्होंने सोच विचार न किया होता तो थोड़ी ही देर में उनका काम तमाम हो जाता। इस एक क्षण भर में निश्चय करना था कि क्या किया जाय? क्या अफ़ज़लखां की तलवार से अपना सिर कटवा लिया जाय अथवा पहले सोची हुई खबरदारी से काम लिया जाय? इस संसार में कोई भी ऐसा न होगा जो यह कहे कि शत्रु के हाथ से इस प्रकार मर जाना अच्छा है। तुरन्त ही शिवाजी ने बाघनख उसके पेट मे घुसेड़ दिया, तत्काल ही अफ़-ज़लखां की तलवार नीचे आई, मराठा वीर ने कुशलता से उसकी चोट से अपने को बचाया और अपनी तलवार से उसका काम

तमाम कर डाला। किस जगह इस महापुरुष ने मुसलमान सरदार के साथ विश्वासघात किया यह हमारी समझ में नहीं आता! अफ़ज़लखां मारे गर्व के फूल रहा था और उसका अपने बल और सेना में हद से ज्यादह विश्वास था। शिवाजी अपना शत्रु का बल जानते थे और यह भी जानते थे कि अफ़ज़लखाँ का हृदय कैसा है। इसलिए उन्होंने पूरी ख़बरदारी से काम किया। अहङ्कार में चूर रहने के कारण उसे अपने किये का फल मिला, इसमें शिवाजी का क्या दोष है?

इस प्रकरण का फ़ैसला करते समय निम्नलिखित तीन बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

(१) यदि विश्वासघातपूर्वक अफ़ज़लखां का बध करना ही शिवाजी को अभीष्ट होता तो वे स्वयं अपनी जान खतरे में न डालते। और किसी को भेज कर उन्होंने यह काम करवा लिया होता अथवा किसी अन्य उपाय की योजना की होती। उन्हें स्वयं जाकर अफ़ज़लखां से भेंट करने की कोई आवश्यकता न होती।

(२) सब इतिहासकार लिखते हैं कि भेंट होते ही अफ़ज़लखाँ ने तलवार ऊपर उठाई। जब स्वयं अपनी जान पर आ बीते तब कौन इतना उदार है कि चुपचाप देखता खड़ा रह जाय। फिर शिवाजी अकेले शिवाजी ही न थे, उनके साथ महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता, स्वराज्य इत्यादि सब का घनिष्ठ सम्बन्ध था। इस जवाबदेही को शिवाजी अच्छी तरह जानते थे।

(३) शिवाजी के सन्धि करने के सँदेशे के विषय में अफ़ज़लखां को किसी प्रकार का सन्देह नहीं था। सन्देह रहता तो वह स्वयं ही मिलने को न आता। उसे इस बात के सँदेशे की सचाई

पर पूर्ण विश्वास था, इसी कारण वह स्वयं शिवाजी से मिला। बल्कि उसीने विश्वासघात-पूर्वक शिवाजी को जिन्दा या मरा पकड़ ले जाने का प्रयत्न किया। उस प्रयत्न में वह सफल न हुआ और मारा गया। इसमें शिवाजी का क्या दोष ?

(४) यह कोई आक्षेप तो है नहीं, तथापि कुछ लोग कह सकते हैं कि शिवाजी ने बग़ावत का झण्डा खड़ा करके पिता को बहुत कष्ट पहुँचाया। इस आक्षेप का उत्तर देने के पहले हम अपने पाठकों का ध्यान फिर से पूर्व परिच्छेदों की ओर, विशेषतः दूसरे और चौथे की ओर, आकर्षित करना चाहते है। वहाँ आपको मालूम हो जायगा कि शिवाजी का सा शीलवान पुरुष कितना मातृपितृ भक्त था। शीलवान पुरुष हमेशा मातापिता ही क्या वरन् सारे आदरपात्र पुरुषों के प्रति आदर प्रदर्शित करते हैं। शिवाजी अपनी माता, दादोजी कोंडदेव, स्वामी रामदास, इत्यादि आदरार्ह व्यक्तियो का कितना आदर सत्कार करते थे, इसका वर्णन पहले ही हो चुका है। पिता से दूर रहने पर भी पिता का कितना ध्यान रखते थे, इसका भी दिग्दर्शन करा चुके हैं। अब एक इतिहासकार क्या लिखते हैं, सो सुनिए:—

"तब आदिलशाह को इस बात की फिक्र हुई कि शिवाजी से किस प्रकार सुलह हो। शिवाजी यदि किसी की बात मानेंगे तो केवल अपने पिता की। यह जान कर उसने इस कार्य के लिए शहाजी को भेजने का निश्चय किया। शहाजी की भी इच्छा पुत्र से मिलने की थी। अफजलखाँ और बाजीघोरपड़े से बदला लेने के कारण शिवाजी के विषय में पिता को विशेष अभिमान था।

तब "पुत्र मेरे बसका नहीं है, तथापि प्रयत्न कर देखता हूँ" यही कह वे तुलजापुर, पण्ढरपुर होते हुए आये।

पिता-पुत्र की भेट कितनी प्रेमपूर्वक हुई, इसका वर्णन करना कठिन है! बड़े साजबाज के साथ शिवाजी पिता को लेने गये। मिले बहुत दिन हो गये थे, इस कारण प्रथम भेट मन्दिर में हुई। शहाजी के पालकी मे बैठ जाने पर, शिवाजी नंगे पैरों पालकी कन्धे पर रख कर चलने लगे! घर पहुँचने पर सद्गदित अन्तः-करण से दोनों की बातचीत हुई! शहाजी के कारण शिवाजी और आदिलशाह के बीच जो सुलह हुई उसमें बीजापुर को ही विशेष लाभ हुआ। शहाजी के कारण शिवाजी को शपथ करनी पड़ी कि पिता के जीतेजी बीजापुर से फिर झगड़ा न करूँगा।"

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि शिवाजी ने अपना प्रण पूर्णतया निबाहा।

क्या ऐसा पुत्र कभी अपने पिता को कष्ट देने की इच्छा कर सकता है? हाँ, कई बार स्वराज्य के उद्धार करने के लिए किये गये शिवाजी के कुछ कार्यों के कारण शहाजी को कुछ कष्ट सहना पड़ा, यद्यपि शिवाजी की यह इच्छा नहीं थी; पर शिवाजी तत्काल उनके दूर करने का प्रयत्न करते रहे। यहाँ एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि मुसलमानों से महाराष्ट्र का उद्धार करना था और शहाजी उन्ही के नौकर थे। इसी कारण उन्हे कभी कभी कष्ट सहना पड़ता था। स्वराज्य के उद्धार का कार्य शिवाजी को शहाजी की इच्छा के विरुद्ध करना पड़ा, और ऐसा इतिहास में हमेशा होता ही आया है। तरुण पीढ़ी के ध्येय, साधन इत्यादि वृद्ध पीढ़ी से सदा भिन्न रहते हैं, और तरुण पीढ़ी अपना काम अनिच्छापूर्वक

वृद्धों की इच्छा के विरुद्ध किया ही करती है। यह मानवी स्वभाव ही है—सदा से इतिहास में इसका चित्र चित्रित होता आया है। यदि ऐसा न हो तो प्रगति का मार्ग ही बन्द हो जाय। युवकों में तेजी की बहुत आवश्यकता है—केवल उसका अत्यन्त वेग सौम्य करने के लिए वृद्धों की बुद्धिमानी की आवश्यकता है। शिवाजी सब काम अत्यन्त विचारपूर्वक किया करते थे। उन्हें उपदेश देने के लिए माता और स्वामी रामदास आदि थे ही। तथापि वे पिता की भी इच्छा का ख़याल करते रहते थे। पिता के त्याग देने पर भी और शत्रु पक्ष की नौकरी करने पर भी, उनके हृदय में पिता के प्रति आदर तिल भर भी कम न हुआ, यह पुनः पुनः याद रखने लायक है !! इस बात का और एक तरह से विचार किया जा सकता है। हम कही चुके हैं कि शिवाजी एक अकेले पुरुष नहीं थे, वरन् उनके शरीर और मन में महाराष्ट्र का शरीर और मन लिप्त था, उनकी इच्छा महाराष्ट्र की इच्छा थी। उनकी महत्वाकांक्षा महाराष्ट्र की महत्वाकांक्षा थी। क्या वे केवल पिता की अनिच्छा के कारण किसी प्रकार महाराष्ट्र का ध्यान छोड़ देते ? क्या सदसद्विवेक बुद्धि को त्याग देते ? इस महान् कार्य के लिए उन्हें अपनी सदसद्विवेक बुद्धि की आज्ञा मानना आवश्यक था। बड़े बड़े काम करनेवालों को ऐसा ही करना पड़ा है। और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि शिवाजी के शुद्ध चरित्र पर कई इतिहासकारों ने निरर्थक कीचड़ फेंकने का प्रयत्न किया है, पर उसमें वे फलीभूत नहीं हुए !

नवां परिच्छेद

शिवाजी के विषय में विदेशियों का मत

पहले हम कह चुके हैं कि शिवाजी के विपय में जिन्हें सच्चा ज्ञान नहीं, वे इस महापुरुष को 'डाकू, बागी, लुटेरा, चोर' इत्यादि नामो से याद किया करते हैं। यह रीति अभी तक प्रचलित है। यह हम अच्छी तरह जानते हैं कि कुछ पढ़े लिखे हमारे हिन्दुस्थानी भाई भी शिवाजी को यही उपाधियां दिया करते हैं, इसका कारण केवल अज्ञान है। ऊपर के रङ्ग रूप से साधारण लोग किसी वस्तु का मूल्य निश्चय किया करते हैं और तमाम अंग्रेजी पुस्तकों में यही बात पढ़नी पड़ती है, इस कारण इन लोगों का ऐसा मत हो जाना अस्वाभाविक नहीं। परन्तु इतना ध्यान रखना चाहिए कि जिस किसी पुरुष में कुछ भी महान् गुण हैं, उसके विषय में उसके शत्रु भी—गाली देते समय भी—अनिच्छापूर्वक अनजाने ही (उनका तो यही ख़याल रहता है कि हम केवल गालिप्रदान ही कर रहे है) उसकी कुछ प्रशंसा भी कर जाते है। जब हम ऐसा देखें तो हमें तुरन्त समझ लेना चाहिए कि इस पुरुष में ऐसे कई महान् गुण अवश्य थे जिनके कारण उसके शत्रु को भी उसकी प्रशंसा करने के लिए बाध्य किया। आज हम पाठकों को यही दिखलाना चाहते हैं कि शिवाजी पर जिन जिन लोगों ने कीचड़ फेंकने का प्रयत्न किया है, उन्होंने उस कीचड़ के साथ अनजाने कुछ हीरे और मोती भी अपने जेब से निकाल कर फेक दिये है।